'रेत उपन्यास में चित्रित जनजातीय जीवन'

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम. फिल. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत)

लघु शोध प्रबंध

2010

प्रस्तुतकर्ता

एम. अब्दुल रज़ाक

निर्देशक एवम् विभागाध्यक्ष

प्रो. रवि रंजन

प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

हैदराबाद विश्वविद्यालय,

हैदराबाद–500046

DEPARTMENNT OF HINDI

School of Humanities, Date: 30.06.2010

University of Hyderabad,

Hyderabad- 500046.

This is to certify that I, **M. ABDUL RAJAK** have carried out the research embodied in the present dissertation entitled **'RET UPNYAS MEIN CHITRIT JANJATIYA JEEWAN'** for the full period prescribed under M.Phil. ordinances of the University of Hyderabad.

I declare to the best of my knowledge that no part of this dissertation was earlier submitted for the award of research degree of any University.

(Signature of Supervisor) 30/6/10

एम. अब्दुल रज़ाक
(Signature of the candidate)

Name: M. Abdul Rajak

Enrolment No.:09HHHL15

Dean, School of Humanities

DEAN I/c
SCHOOL OF HUMANITIES
UNIVERSITY OF HYDERABAD
HYDERABAD - 500 046, A.P. INDIA

Head, Department of Hindi

Head
Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
Professor C.R. Rao Road
Central University P.O.
Hyderabad-500 046.

अनुक्रमणिका

भूमिका

प्रथम अध्याय 1—19

भगवानदास मोरवाल : व्यक्तित्व और कृतित्व

1.1 जीवन वृत्त

1.2 औपन्यासिक कृतियाँ

1.2.1 काला पहाड़

1.2.2 बाबल तेरा देस में

1.2.3 रेत

1.3 अन्य कृतियाँ

1.3.1 कहानियाँ

1.3.2 कविताएँ

1.3.3 बच्चों के लिए : कलयुग पंचायत

1.4 जनजातीय साहित्य : मोरवाल का स्थान

द्वितीय अध्याय 20–50

जनजातीय जीवन : इतिहास एवं संस्कृति

2.1 जनजातीय जीवन : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप एवं अवधारणा

2.2 भारतीय इतिहास में जनजातियाँ

2.3 भारतीय संविधान में जनजातियों की स्थिति

2.4 जनजातीय समाज एवं जीवन

2.5 भारत की प्रमुख जनजातियाँ

2.6 भारत की अपराधी जनजातियाँ

2.7 अपराधी जनजातियों की छवि : कानूनी एवं राजनीतिक स्तर

2.8 कंजर जनजाति

निष्कर्ष

तृतीय अध्याय 51–95

" 'रेत' उपन्यास में चित्रित जनजातीय जीवन "

3.1 कंजरों का सांस्कृतिक जीवन

3.2 जनजातीय स्त्री का यर्थाथ

3.3 पुरूष पात्र

3.4 राजनीतिक चेतना

3.5 समाज सुधार के प्रयत्न

3.6 उपन्यास की भाषा शैली

उपसंहार 96–99

संदर्भ ग्रंथ सूची 100–103

परिशिष्ट

भूमिका

हिंदी साहित्य लेखन की परंपरा ने समय–समय पर कई परिवर्तन और परिवर्धन के पड़ाव पार किए हैं। एक ओर जहाँ 'साहित्य' भारतीय समाज व्यवस्था धर्म, संस्कृति, और राजनीति के प्रभाव से बच नहीं सका, वही दूसरी ओर आजाद भारत में बनी रही वर्ण, जाति, लिंग–भेद से लस्त–पस्त ने भी उसे झकझोरा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध को साहित्यिक विमर्शों का काल कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यह युग साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं समाज और राजनीति के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी हलचलों का युग है। भारतीय जातिवादी पिरामिड के विशेषकर निचले तल की चेतना में क्रांति की तीव्र सुनामी लहर बनकर ये नवविमर्श साहित्य जगत में शीर्ष स्थान के लिए संघर्षरत दिखाई पड़ने लगे। परिणामस्वरूप साहित्य में नारी विमर्श, दलित–विमर्श, अन्य विमर्शों और नई अवधारणाओं में 'जनजातीय साहित्य लेखन की मद्धिम रोशनी तेज और तेजतर होती दिखाई पड़ती है।

एम.फिल. उपाधि हेतु शोध विषय की चयन प्रक्रिया के दौरान मुझे 'रेत' के कुछ अंश पढ़ने से यह अनुभव हुआ है कि यह उपन्यास कंजर जनजाति के स्त्रियों की पीड़ा, दुख–दर्द, तकलीफों, मजबूरी, विडंबना, त्रासदी, को चित्रित करता है। यह कंजर जरायम पेशा करने वाली तथाकथित अपराधी जनजाति है। कंजरजाति के अविवाहित लड़कियाँ देह व्यवसाय करती हैं। आज उत्तर आधुनिक युग में उपभोक्ता, बाजारवादी संस्कृति ने स्त्री को भोग की वस्तु बना दिया है। यह भोग की वस्तु समझे जाने वाली स्त्री देह के बल पर संघर्ष करके जीवन के सारी जकड़ों से मुक्त होकर एम.एल.ए. बन जाती है। यहाँ सोचने की बात यह है कि एक देह व्यवसाय करने वाली खिलावड़ी (वेश्या) विधान सभा के मंत्री बन जाती है। यह विषय पूर्ण रूप से शोध करने लायक लगने लगा। इसी कारण प्रस्तुत शोध कार्य के लिए मैंने भगवानदास मोरवाल कृत ''रेत' उपन्यास में चित्रित जनजातीय जीवन "विषय चुना भगवानदास मोरवाल का समकालीन कथाकारों में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। कथा साहित्य की अन्य विधाओं में उन्होंने समाज की विसंगतियाँ, राष्ट्र में व्याप्त, अन्याय, विडंबना को अपनी रचनाओं के माध्यम से उजागर किया है। मोरवाल अपने

उपन्यास की विषय वस्तु पर पर्याप्त शोध ही नहीं करते हैं, बल्कि उस समाज का अंग बनकर उससे घुलते–मिलते उस जीवन की त्रासदी को शिद्‌दत से, राग–रंग से उठाते हैं। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की संरचना में उपन्यास के स्थापत्य के बीच हमेशा एक ट्रैजडी होती है। लेकिन पूरी–पूरी विश्वसनीयता और पठनीयता लिए हुए हैं। मोरवाल के कथा लेखन के केंद्र में हमेशा हाशिए का वह उपेक्षित, प्रताड़ित, और शोषित समाज, खासकर स्त्री होती है। जिसकी ओर से संभ्रांत समाज ने मुँह फेर लिया है। इस समाज के जीवन को प्रस्तुत करते हुए वे भरसक कोशिश करते हैं कि इस अभिशप्त समाज को मुक्ति मिले और अपनी कवित्वपूर्ण संवेदनपूर्ण, संवेदनशीलता से पाठकों का मन ही नहीं दृष्टिकोण भी बदल देते हैं।"

विषय प्रवेश के उपरांत अध्ययन सुविधा के लिए इस लघुशोध प्रबंध को तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है तथा अंत में परिशिष्ट और निष्कर्ष को उपसंहार में प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय में भगवानदास मोरवाल के जीवन और साहित्य का परिचय दिया गया है। इसके अंतर्गत उनके सभी उपन्यासों की प्रासंगिकता पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में जनजाति जीवन इतिहास एवं संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है। इसके अंतर्गत जनजाति का स्वरूप एवं अभिप्राय साहित्य का स्वरूप, विमर्श के मुद्दे, संविधान में जनजातियों की स्थिति, समाज एवं जीवन, जनजातियों की अपराधी छवि, कानूनी एवं राजनीति स्तर, अपराधी बनने के कारण, भारत की जनजातियाँ और अंततः भारत की अपराधी जनजातियों पर संक्षेप में बताने की कोशिश की गई है।

तृतीय अध्याय में 'रेत' उपन्यास की कथावस्तु के अंतर्गत उपन्यास की कथा में चित्रित सभी समस्याओं का चित्रण किया गया है। यहाँ कंजरों की सांस्कृतिक जीवन, स्त्री का यथार्थ, राजनीतिक चेतना, समाज सुधार, पुरुष का स्थान, भाषा आदि कथा के अन्य विषयों पर चर्चा किया गया है।

सर्वप्रथम मैं अपने हिंदी विभाग के अध्यक्ष एवं अपने श्रद्धेय गुरूवर प्रो. रवि रंजन जी को हृदयपूर्वक धन्यवाद देता हूँ तथा उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने विषय चयन से लेकर संपूर्ण शोध–प्रबंध पूरा होने तक अपने प्रशासकीय कार्यों में व्यस्त रहने के बावजूद मेरे लिए समय निकाल कर नये–नये विषयों एवं विचारों से मुझे अवगत कराया तथा समय–समय पर मेरा पथ–प्रदर्शन करते रहे।

विभाग के सभी गुरूजनों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जो मेरा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हमेशा प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन करते रहे।

लेखक भगवानदास मोरवाल जी को धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने भाषा की समस्याओं को सुलझाते और यथायोग्य मार्गदर्शन करते रहे उनको भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

मुझे प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग देनेवाले उन सभी मित्रों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ अपनी तमाम व्यस्तता के बावजूद लघुशोध प्रबंध टंकन हेतु संदीप को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। आभारी हूँ। डॉ. अभिषेक रौशन, आप हमारे शंकाओं को सुलझाते रहे तथा मेरे साथी राजीव कुमार और मेरे मित्र, पवन कुमार, राघवेंद्र राव, माया, जो मेरे साथ रहकर हमेशा प्रोत्साहित करते रहे।

इस लघुशोध प्रबंध कार्य की प्रस्तुती पर मुझसे अधिक प्रसन्नता मेरे–माता–पिता, भैया–भाभी, बहन तथा परिवार के अन्य सदस्यों को होगा। उनके स्मरण के साथ मैं अपने लघु शोध प्रबंध को मेरी स्वर्गीय नानी को समर्पित करता हूँ।

एम.अब्दुल रज़ाक

" 'रेत' उपन्यास में चित्रित जनजातीय जीवन"

प्रथम अध्याय

I. भागवानदास मोरवाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.1 जीवन वृत्त

1.2 औपन्यासिक कृतियाँ

1.2.1 काला पहाड़

1.2.2 बाबल तेरा देश में

1.2.3 रेत

1.3 अन्य कृतियाँ

1.3.1 कहानियाँ

1.3.2 कविताएँ

1.3.3 बच्चों के लिए : कलियुग पंचायत

1.4 जनजातीय साहित्य : मोरवाल का स्थान

I. भागवानदास मोरवाल जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व :–

''पश्चिम में भले ही उपन्यास का जन्म मध्यवर्ग के उदय के साथ हुआ हो लेकिन हिन्दी में भारतेन्दु युग में उपन्यास का आरम्भ प्रत्यक्षतः सामाजिक प्रतिरोध के आख्यान के रूप में और अप्रत्यक्षतः अंग्रेजी शासन के विरोध में हुआ। साहित्य की दूसरी विधाओं की तरह उपन्यास व्यक्ति और समाज के बीच जिस प्रति समाज की रचना करता है; यथार्थ को आख्यान में बदलते हुए या आख्यान को यथार्थ में बदलते हुए, वस्तुतः उसमें हमारे तथाकथित सभ्य समाज का पिछड़ापन, गुलाम, मानसिकता, शोषण, अत्याचार क्रूरता और अमानवीयता की अनेक लोमहर्षक और रोमांचक छवियाँ उजागर करता है।''[1]

एक अच्छा लेखक उपन्यास में इतिहास नहीं लिखता है बल्कि इतिहास में उपन्यास लिखता है। यही नहीं अपने आख्यान को सावधानी पूर्वक एक तरफ यथार्थवाद के आतंक से बचाता है तो दूसरी इतिहास के बाहर होते हुए भी अपने समय के इतिहास में रहता है।

समकालीन उपन्यास लेखन अधिक आक्रामक सामाजिक जीवन की कठिनाईयों के कारण आक्रोश से भरा हुआ है तथा युवा पीढ़ी की जुझारू मानसिकता और इस मानसिकता को तोड़नेवाली सत्ता के विभिन्न चेहरों की पहचान सहज और सतर्क हैं। इसका आक्रोश और गुस्से से भरा होना स्वाभाविक है। समकालीन उपन्यास लेखन अनुभव के प्रामाणिक यथार्थ से परिचित है। समकालीन उपन्यास मुख्यता व्यक्ति के आत्मा–संकट, सामाजिक परिवर्तन की स्थितियाँ सत्ता और श्रम के संघर्ष तथा आम आदमी की जिंदगी की पहचान में सर्वथा सफल है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास अपने आयाम और वैविध्य में एक विशाल जंगल की तरह है। जिसमें एक तरफ झाड़–झंखाड़ की तरह बहुत बड़ी संख्या में व्यावसायिक उद्देश्यों से लिखी गयी कृतियाँ हैं। दूसरी ओर अपनी ऊँचाईयाँ, फैलाव और सौंदर्य से प्रभावित करने वाले वृक्षों की तरह महान रचनाएँ भी हैं। जो समकालीन हिन्दी उपन्यास आज की जिंदगी को पूर्ण रूप से उसके समस्त फैलाव और वैविध्य में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है। भारतीय जीवन मोटे रूप में

[1] आजकल पत्रिका में 'साधना अग्रवाल'–अक्टूबर 2008

तीन क्षेत्रों से विभक्त है; गाँव, नगर–कस्बा, महानगर इन तीन क्षेत्रों की जिंदगी के अलग–अलग रूप और समस्याएँ हैं। समकालीन समय में कई ऐसे उपन्यास लिखे गये हैं जो इन क्षेत्रों के जीवन की ऐतिहासिक परिस्थितियों से पैदा हुए नये यथार्थ के आज के आदमी की व्यथा और अंतर द्वंद्व के विश्वसनीय चित्रण में सफल हुए हैं।

समकालीन हिन्दी उपन्यास को अगर देखा जाए तो अनेक जनजातियों के जीवन को लेकर औपन्यासिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।जनजातीय साहित्य प्रायः सभी साहित्य विधाओं में अपनी पहचान बनता जा रहा है, लेकिन प्रस्तुत चर्चा के केंन्द्र में कथा साहित्य है। विशेषता उपन्यास साहित्य है, इसलिए यहाँ उपन्यासों पर ही विचार किया जा रहा है। इन उपन्यासों में विषय वस्तु की दृष्टि से देखा जाए तो जाहिर है कि उनके जीवन को लेकर, उनकी संस्कृति, रहन–सहन, रीति–रिवाज के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक, बहु आयामीविसंगतिपूर्ण स्थिति, विडंबना, कुंठाएँ मजबूरी, तकलीफें आदि को पूरी नग्नता के साथ पर्दाफाश किया गया है। जनजातीय विषयों पर लिखनेवालों में संजीव, श्री प्रकाश मिश्र मनमोहन पाठक, तेजिंदर, राकेश कुमार सिंह, हिमांशु जोशी, श्रवण कुमार, भगवानदास मोरवाल, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णचंद्र शर्मा आदि हैं। हाल–फिलहाल में कथाकार भवानदास मोरवाल का नाम बहुत मशहूर हुआ है।

मोरवाल जी हिन्दी के उन कुछ युवा कथाकारों में है, जिन्होंने निरंतर साहित्य साधना से समकालीन कथा साहित्य में तेजी से अपनी पहचान बनाई है। वे समकालीन हिन्द साहित्य के महत्वपूर्ण उपन्यसकारों में से एक है। उनके साहित्य में आधुनिक सत्तातंत्र एवं विकास–प्रक्रिया भी लेखक की नजरों से ओझल नहीं हो सकी है। कहने का मतलब यह है कि हाशिए के समाज का सरकार ने कहाँ उपेक्षा की है और उस समाज की पीड़ा, दुःख–दर्द, को पूरे यथार्थ के साथ उनके साहित्य में व्यक्त किया है। हमें उनके साहित्य के बारे में विचार करने से पहले उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे मे बताना उचित होगा।

1.1जीवन वृत्त

कथाकार भगवानदास मोरवाल का जन्म दक्षिण हरियाणा के गुडगाँव जिले के 'काला पानी' कहे जानेवाले मेवात के छोटे से कस्बे 'नगीना' के एक मजदूर परिवार में 23 जनवरी 1960 में हुआ। आपने अपनी प्रारंभिक शिक्षा अपने इसी पैतृक कस्बे में पूरी की : और उनकी डिग्री की पढ़ाई नूहँ के यासीन मेव डिग्री कॉलेज से हुई। आपने आगे की पढ़ाई राजस्थान विश्वविद्याल में की। वही हिन्दी एवं उसके साथ–साथ हिन्दी एवं अंग्रेजी पत्रकारिता डिप्लोमा की डिग्री भी हासिल की। मोरवाल जी शिक्षा के उपरांत लगभग सात वर्ष तक स्वतंत्र पत्रकारिता करने लगे। वे स्वतंत्र पत्रकारिता के साथ–साथ साहित्य में भी बहुत रूचि रखते थे। अंततः पत्रकारिता की नौकरी से इस्तीफा दिया और साहित्य में प्रवेश किया। साहित्य में प्रवेश करने के उपरांत उन्होंने प्रथम कहानी संग्रह 'सिला हुआ आदमी' का सन् 1986 में प्रकाशित करवाया। हाल–फिलहाल में मोरवाल जी का नाम खासतौर से कथासाहित्य में बहुत प्रसिद्ध हुआ है।

उपन्यासकार मोरवाल जी की विशेषता यह भी है कि उन्होंने समाज के हाशिए के लोगों को अपने कथा फलक पर उन्मुक्त भूमिका निभाने की छूट दी। मोरवाल जी की पृष्ठभूमि दलित जरूर है, लेकिन किरदारों के बर्ताव में वह दलित ग्रन्थि से अछूते है। वे पुरूष होने के बावजूद उन्होंने स्त्रियों के शोषण, पीड़ा, दुख–दर्द, बहु आयामी विसगतिपूर्ण स्थिति, विडंबना, संत्रास आदि को ऐसा यथार्थ रूप दिया है, जो स्त्री साहित्यकार भी न दे सकें। उनकी दृष्टी व्यक्ति एवं समाज के तकलीफों को ओझल नहीं कर पायी। कहने का मतलब यह है कि स्वातंत्रोत्तर भारत के मजदूर वर्ग की इच्छा एवं आकांक्षा से लेकर उन्होंने देह धंधा तक सारे संत्रास को पूरी नग्नता के साथ पर्दाफाश किया है।

मोरवाल जी का अस्तित्व केवल उपन्यास में ही नहीं अन्य विधाओं में भी उनका नाम बहुत प्रसिद्ध है। उनकी कहानियों में जनजातीय स्त्रियों की शोषण एवं दमन को चित्रित करती है। वे आगे चलकर शोषण से मुक्त का सुझाव भी देते है साथ ही वे हाशिएँ के समाज से सभ्य समाज में आने की बात भी कहते हैं। कहने का मतलब यह है कि एक नये समाज की नींव डालने की बात कहते है। जो हर

तरह के शोषण से मुक्त हो । उनकी कविताओं में मुस्लिम समाज में स्त्रीयों की बहुआयामी विसंगतिपूर्ण पीड़ादायक स्थिति आदि को पूरी नग्नता के साथ पर्दाफाश किया। अंततः निष्कर्ष के रूप में कहा जाए तो मारवाल ने अपनी कविताओं के माध्यम से हाशिए पर के समाज और मुस्लिम समाज की स्त्रियों की दोहरी कष्टपूर्ण स्थितियों को नवीन भावभूमि के रूप में चित्रित किया है।

औपन्यासिक कृतियाँ

1. 'काला पहाड़'

उपन्यास का काम समकालीन यथार्थ के प्रतिनिधित्व से अतीत को पुनजीर्वित और भविष्य के मिजाज को रेखांकित करना है। भगवानदास मोरवाल के उपन्यास 'काला पहाड़' में ये विशिष्टताएँ हैं। 'काला पहाड़' के पात्रों की कर्मभूमि मेवात क्षेत्र है। हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश की सीमाओं में फैला यह वह क्षेत्र है जिसने मोगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर से टक्कर ली थी और जिसने भारत की मिली–जुली तहजीब को आज तक सुरक्षित रखा है।

'काला पहाड़' केवल एक उपन्यास का शीर्षक नहीं है, वरन् मेवात की भौगोलिक–सांस्कृतिक अस्मिता और समूचे देश में व्याप्त बहुआयामी विसंगतिपूर्ण प्रक्रिया का प्रतीक है। इसके पात्र– ''सलेमी, मनीराम रोबड़ा, हरसाय, सुलेमान, छोटेलाल, बाबू खाँ, सुभान खाँ, रूमाली, अंगूरी रामदेई, तरकीला, मेमन चौधरी, करीम हुसैन व चौधरी मुर्शीद अहमद आदि ठेठ देहाती हिंदुस्तानी की काहानी करते हैं। मेवात के ये अकिचंन पात्र अपने में वे सभी अनुभव, त्रासदी खुशियाँ समेटे हुए हैं, जो किसी दूरदराज अनजान हिंदुस्तानी की भी जीवन–पूँजी हो सकती है।

भगवानदास मोरवाल के उपन्यास 'काला पहाड़' को यूँ तो स्वातंत्रोत्तर भारतीय समाज के उस धर्मनिरपेक्ष ढाँचे की टूटन के रूप में पढ़ा जा सकता है, जो बाबरी मस्जिद के ध्वंस के साथ दरक चुका है। उपन्यासकार इस विमर्श को मेव समाज की जिस भौगोलिक पृष्ठभूमि में औपन्यासिक बनाता है जो इस्लाम धर्म स्वीकार करके भी पक्के मुसलामान न बन सके और जो पक्के राष्ट्रवादी होने के बावजूद सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों के विमर्श से बाहर है। उपन्यास के अंत में मुख्य

कथापात्र सलेमी का यह पछतावा है कि–''मैं तो रात–दिन बस वा घड़ी ए कोसतो रहूँ.........जो घड़ी हमने पाकिस्तान जाण सू ना कर दी है।''[2] लेकिन 'काला पहाड़' के सलमी के भारतीय राष्ट्र–राज्य के धर्मनिरपेक्ष ढाँचे से इस मोह भंग को सांप्रदायिक समस्या के घिसे–पिटे हिन्दू–मुस्लिम खाँचों में नहीं समझा जा सकता। कारण यह कि मेवात का मेव मुसलामान न विभाजन की मानसिकता से ग्रस्त रहा है और न ही उत्तर भारतीय मुसलमान की अल्पग्रंथि से पीड़ित।विभाजन के समय पाकिस्तान न जाने का निर्णय लेने वाले ये मेव मुसलमान अटल देश भक्त रहे हैं। ''अठारह सौ सत्तावन में दौ सौ अट्ठावन में जाति के लोग शहीद हुए थे। इस इलाके में कोई फिरकाना फसाद न हुआ है, सबसे बड़ी बात तो ई है के इलाका में हिंदू और मेव एक कुड़बा की तरह रहता आया है।....मजाल है कि काकले की बहाड़ बेटा वे आँख तो उठा जाए।''[3] दरअसल मेवात के जिन मेवों को भगवानदास मोरवाल कथात्मक बनाते हैं ''हिन्दुओं से इस्लाम धर्म कुबूल करनेवाल शायद ये ही आखिरी हिंदू हैं।.......वास्तव में मेव एक पुरानी क्षत्रिय कौम है, जिसने बाद में इस्लाम धर्म कुबूल कर लिया था। ज्यादातर इतिहासकारों (Historiance) की एक ही राय है कि मेवों के पुरखे चंद्रवंशी और सूरजवंशी राजपूत थे। जो तोमर और राठौर यादव के नाम से जाने जाते हैं।''[4] मेव ऐसे मुसलमान थे जिनके यहाँ, ''रिश्ता करते वक्त हिन्दुओं की तरह मॉ, दीदी, नानी और खुद का गोत्र बचाया जाता है।........सिर्फ माँ का दूध नहीं बचाया जाता...... आज भी इनके रस्मों–रिवाज हिन्दुओं के काफी नजदीक हैं।''[5]

धार्मिक भिन्नता के कारण मेव समुदाय की सांस्कृतिक एकता की यह विरल धरोहर बाबरी मस्जिद के ध्वंस की छाया किस तरह छिन्न–भिन्न होती है, 'काला पहाड़' इस का एक प्रामाणिक आख्यान है। यह औपन्यासिक कथा यह विडंबना भी लिये हुए है कि जिस मेवात के रणबाँकुरे हसन खाँ मेवाती ने बाबर को बाहर से आए हमलावर की संज्ञा देते हुए राणा सांगा के खिलाफ युद्ध करने से मना कर दिया था, उसी की मेव संतानों को यह पछतावा हो कि उन्होंने पाकिस्तान जाने से

---

[2] काला पहाड़'– भगवानदास मोरवाल, पृ.–455
[3] काला पहाड़'– भगवानदास मोरवाल, पृ.–16
[4] काला पहाड़'– भगवानदास मोरवाल, पृ.–3
[5] काला पहाड़'– भगवानदास मोरवाल, पृ.–87

क्यों मना कर दिया! भारतीय राष्ट्र–राज्य से सलेमी जैसे मुसलमानों का यह अलगाव उस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का दुष्परिणाम है; जो अयोध्या के राम जन्म भूमि एवं सोमनाथ मंदिर को संस्कृति के प्रतीक के रूप में प्रचारित कर रहा है।

भारत विभाजन के दौरान पाकिस्तान जाने से इंकार से लेकर दूसरा पाकिस्तान बनने की मानसिकता तक मेव समाज की यंत्रणा को जिस जीवन–राग में विन्यस्त कर उपन्यासकार ने कथात्मक बनाया है। वह हाशिए का ऐसा इतिवृत्त है जो भारतीय राष्ट्र की प्रभुत्ववादी अवधारणाओं से मुठभेड़ करता है। मेव समाज से लुप्त होते भाई–चारे व निर्जन होते मेव इलाके कारणों की तलाश करती यह उपन्यास कथा विकास की उस विकलांगता को भी रेखांकित करती हैं; जिसके चलते प्राकृतिक विपदाओं की विकरालता और भी बढ़ जाती है। लोग इलाका छोड़कर भाग रहे हैं क्योंकि या ''गाँओं में रहके काई भूखों थोड़ेई मरणों है। न कोई रोजगार न धंधा.... लावणी भी अब ना रही......जब पेट ही भरणों मुश्किल हो जाए तो आदमी यही करोगे''[6] मेवात की यह आर्थिक टूटन सामुदायिक एकता को आखिर कब तक बरकरार रख सकती है क्योंकि ''चिमार चुल्डा तलक तो हौले–हौले अपनी पुस्तौनी धन्धाने छोड़–छोड़ के दिल्ली गाँव भाग जा रहा है।''[7]

मोरवाल जी 'काला पहाड़' के औपन्यासिक कथ्य में यह तथ्य अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ विन्यस्त करते हैं कि किसी इलाके की आर्थिक टूटने वहाँ के समुदायिक व सांस्कृतिक जीवन को तोड़ती है। यही वह जमीन है जहाँ सांप्रयादिक तत्वों की खेती फलती–फूलती है। दादा खान की मजार पर गलेफ (चादर) चढ़ाने के पुश्तैनी पेशे से छुटकारा पाकर सुभान खाँ रामदेई कुम्हारिन से दीवाली की दीये लेने से भी मना कर देता है, क्यों कि ''रामदेई कौणन्सा मुफ्त में देएगी...वाले ना देनी पड़ेगी सेर आधसेर अनाज....... और फिर ताऊ साही बात तो इ है कि हमारे कौण ही होली–दीवाली मने हैं जो हम दीवा लेएँ......?''[8] सुभान खॉ का दीवली के दीये लेने से इंकार महज आर्थिक परिणाम का दबाव न होकर उस मजहबी विलगाव का भी द्योतक है जो मेंव संस्कृतिके विरूद्ध है। उपन्यासकार इसे सलेमी

6.काला पहाड़– भगवानदास मारवाल–पृ.– 30

7 काला पहाड़'– भगवानदास मोरवाल, पृ.–260

8 काला पहाड़–मोरवाल जी पृ.–259

के इस कथन दुबारा यूॅ अभिव्यक्त करता है, ''मैं कद कह रो हूँ के हमारे हदीस में होली दीवली मने है..... पर ई भी तो सही है कि हमारे मेवन में कही तो मने ही।''[9] सलेमी का कथन उपन्यासकार की सदिच्छा का परिणाम न होकर उस मेव संस्कृति में विन्यस्त है जिसमें बकौल इतिहासकार मुशीरूर हसन अधिकांश लोगों के नाम या तो शुद्ध हिन्दु थे या हिन्दु नाम के आगे 'खान' शब्द लगा था। वे दीवाली दशहरा और कृष्णार्जय तो मनाने के साथ ''सालार' मसूद गाजी के सालार (ध्वज) की भी इबादत करते थे और उनकी बेटियों को विश्सत संबंधी अधिकार भी नहीं थे।''[10]

बाबरी मस्जिद के ध्वंस की छाया में मेवात की मेल–जोल की संस्कृति से कट्टर इस्लामी तहजीब तक के मेवात समाज के इस रूपांतरण को भगवानदास मोरवाल ने जिन आत्मीय जीवन–प्रसंगों व छोटे–छोटे विवरणों द्वारा विश्वसनीय बनाया है वह मेवात के जनजीवन में उनकी गहरी पैठ का परिचायक है। 'काला पहाड़' की औपन्यासिक कथा में स्वांतत्रोत्तर भारतीय समाज की विडंबना भी अंतर्गुफित है कि पिछड़े कहे जानेवाले समाजों का सामुदायिक संतुलन और सौहार्द किस तरह विकास व जनतंत्र के नारों द्वारा छला जाता है। उपन्यासकार मेव समाज की इस त्रासद नियति को भी उजागर करने में सफल हुआ है कि जिन मेवों ने बाबर और अंग्रेजों के विरूद्ध मोर्चा लिया थ, जिन्होंने मुस्लिम लीग को भी मेवों का प्रवक्ता न होने दकर पाकिस्तान का विरोध किया था उन्हें ही 1992 में 6 दिसंबर के बाबरी मस्जिद की छाया में चौधरी करीम हुसौनों, मुर्शीद अहमदों अभयचंद आर्यों एवं विसंभर सत्यार्थियों के संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थ के चलते विभाजन की मानसिकता का शिकार होना पड़ा।

लेखक जहाँ ऐतिहासिक पात्र व मेवात–नायक हसन खाँ मेवाती की ओर आकृष्ट है, वही वह अयोध्या की त्रासदी की परछाइयों को भी समेटता है। इस त्रासदी में झुलसने वाले बहुलतावादी संस्कृति को रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है। उपन्यास की विशेषता यह भी है कि इसने समाज के हाशिये के लोगों को अपने

---

[9] काला पहाड़'– भगवानदास मोरवाल, पृ.–260

[10]. मुशीरूल हरस– Nationalism end communalism politics in India [page- 234]

कथा फलक पर उन्मुक्त भूमिका निभाने की छूट दी है। मोरवाल की पृष्ठभूमि दलित जरूरी है लेकिन किरदारों के ट्रीटमेंट में वह दलित ग्रन्थि से अछूते हैं।

उपन्यास में आधुनिक सत्तातंत्र एवं विकास प्रक्रिया भी लेखक की नजरों से ओझल नहीं हो सके हैं। लेखक के पात्र प्रक्रिया की जटिलताओं एवं विकृतियों को पूरी तटस्थता के साथ उघाड़ते हैं। मोरवाल जी ने निश्चित रूप से हिन्दी उपन्यास की विषय–वस्तु को समृद्ध किया है। लेखक की प्रथम औपन्यासिक कृति के रूप में भी यह स्वागत योग्य है।

2. 'बाबल तेरा देस में'

भगवानदास मोरवाल का दूसरा उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' है इसकी विषय वस्तु स्वातंत्रोत्तर भारतीय मुस्लिम परिवेश को आधार बनाकर लिखी गयी है। कथाकार मोरवाल जी ने मूलरूप से मुस्लिम समाज में स्त्रियों के, दुख–दर्द, पीड़ा, संघर्ष, मजबूरी, तकलीफ़ आदि को आख्यान का विषय बनाया है कथाकार ने इस उपन्यास में जाहिर है कि एक तरह से मुस्लिम तहजीब की सभ्यता, शिष्टता के मुताबिक उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियों को भी कथा में शामिल किया है।

'बाबल तेरा देस में' आख्यान है स्त्री के उन दुखों का जो अपने ही घर के असुरक्षित अभेद्य किले में कैद है। इसकी रेहलगी, बजबजाती अंधी सुरंगों में कहीं पिता, तो कहीं भाई, कही ससुर, तो कहीं–कहीं पति के रूप में एक आदमखोर (नरभक्षी) भेड़िया घात लगाए बैठा है और जिसके हर एक नाके पर तैनात है एक पहरेदार अपने हाथों में थामें धर्म–ग्रन्थों के उपदेशों एवं तथा कथित आदेशों की धारदार नुकीली बरछी।

'बाबल तेरा देस में' इसी किले की पितृसत्तात्मक ईंट–गारे से बनी मज़बूत दीवारों और महराबों के बीच दादी, जैतुनी, असगरी जुम्मी, पारो, शकीला, शगुफ्ता, समीना, जैनब मैन और मुमताज का मौन प्रतिवाद है। हाजी चाँदमल, फत्तू, दीन

मोहम्मद, हनीफ, फौजी जगन प्रसाद, मुबारक अली तथा कलांदर आदि पुरूष पात्र हैं।

मोरवाल जी ने 'बाबल तेरा देस में' आख्यान में समाज एवं व्यक्ति के दुखी ही नहीं उसके साथ–साथ स्त्रियों की पीड़ा विडंबना आदि को पूरी नग्ता के साथ पर्दाफाश किया है। इस उपन्यास में मुख्य पात्र असग़री का बेटा फत्तूजब जेवर लेकर भाग जाता है; यह बात सुनते ही असग़री बहुत खेद होती है। कुछ ही दिनों यह बात गॉव में फैल जाता है। अधेड़ उम्र की एक मुस्लिम विधवा स्त्री कभी–कभी मजबूरी में अत्याचार की शिकार होती है। अतः वे गाँव के ठाकुर धनसिंह एवं नसीब खाँ का आश्रय लेती है। तथा असगरी वही कहती है कि– ''उसी समय धनसिंह के भरे बँगले में यहा तक घोषण कर डाली कि आज से न तो मैं उसकी माँ हूँ और नहीं फत्तू उसका बेटा। आज के बाद चाहे वह किसी कुएँ में गिरे या पोखर में चूल्हे में जाए या भाड़ में''[11] असगरी को बहुत संघर्ष करना पड़ता है और तकलीफे भी झेलनी पड़ती है। अंततः असगरी बहुत व्याकुल हो जाती है– हार कर इस सन्नाटे को बांधते हुए असगरी घुटनों पर हाथ रखकर खड़ी हुई और यह कहते हुए जाने लगी ''अरे अल्ला ऽऽऽ! ऐसी जिंदगानी सू तो मौत ही भली।''[12] मुस्लिम समाज में एक विधवा स्त्री के प्रति बर्ताव बेहद से तनाव ग्रस्त होता है; हम सोच भी नहीं कर सकते कि समाज में इस प्रकार की हरकते क्यों हो रही है।

फत्तू अपनी माँ के जेवर लेकर नौ–दो ग्यारह हो जाता है; उसकी खबर गाँव के सभी मोहल्ले तक फैल जाता है। जब कत्तू का ब्याह (शादी) किसी हैदराबाद लड़की के साथ होने और साथ ले आने की ख़बर भी गाँव हर मोहल्ले तक पहुँच जाती है। यह बात सुनते ही असग़री आश्चर्य से भर जाती है। अंततः असग़री मातृप्रेम से गले मिलाती है और चेहरे में एक तरह से खुशी झांकने लगी। बहू आने के उपरांत असग़री के चेहरे में एक तरह का चमक दिखाई दी। गाँव के स्त्रियों में असग़री की बहू की सुंदरता के बारे में चर्चा होने लगी। असग़री भी कभी–कभी बनियां के बहू से तुलना करती थी। अतंतः पता चलता है कि असग़री

---

[11] बाबल तेरा देस में'– भगवानदास मोरवाल–पृ.–10
[12] बाबल तेरा देस में'– भगवानदास मोरवाल, पृ.–13

की बहू हिन्दु है। जब गाँव के मुखिया धनसिंह, नसीब खाँ जैतुनी सभी धनसिंह के बँगले में शामिल होते हैं। नसीब खाँ कत्तू के ओर इशारा करते हुए हने सुबह सुना था, बिना संकोच के काका आपने ठीक सुनी है कह कर कत्तू खामोश हो जाता है। मुखियां फत्तू को डाँटता है– धनसिंह ने पहले तो हुंकारा भरा और फिर एक तरह से फत्तू की दृढ़ता की परीक्षा लेते हुए बोला, ''तैने थोड़ी बहोत भी ना सोची के मैं जो कर्रो हूँ ऊ ठीक भी या ना........ अन्यायी, तू या गाँओं में फिसाद करवायोगों?'[13] अंततः नसीब खाँ ने अपनी तरफ से जोड़ कर कह देता है कि चल यार ठीक है ब्याह तो हो गयी अब घर तो बसाना पड़ेगा दुनिया की तो आदत कहने की।

असग़री की बहू 'पारो' आते ही घर में फिर खुशियां लौट आने लगीं वहाँ के आस–पास के इलाके में फत्तू की पत्नी 'पारो' की सुंदरता को लेकर कुछ दिन तक चर्चा का विषय बन जाता है। असग़री के बहू आते ही गाँव के अधेड़ उम्र का चाँदमल असगरी के घर आना–जाना शुरू होता है। इधर शाम का झुटफुटा होता और उधर चाँदमल किसी न किसी बहाने पहुँच जाता असगरी के घर। असगरी दिन अपने आपको एक ऐसे भँवर में फँसता हुआ महसूस करने लगी कि जितना उससे बाहर निकलने का प्रयास करती वह उसमें और भीतर उतरने लगती। एक तरह से उसकी हिम्मत टूट गई। असग़री ने बहुत सोचा, अनेक रास्ते खोजे मगर थोड़ी दूर जाकर वे स्वयं ही बंद हो जाती। उसके दिमाग ने जैसे काम करना बंद कर दिया।

बहुत सोचा असग़री ने निर्णय–अनिर्णय के बीच वह ऐसी फँसी की पाँव कब बँगले की ओर बढ़ गए पता ही नहीं चला। असग़री चुपचाप आ बैठी बँगले में। धनसिंह और नसीब खाँ की समझ में कुछ नहीं आया कि असग़री का इस तरह चुप आकर बैठने का क्या अर्थ हो सकता है? धनसिंह हिम्मत जुटाकर असग़री को पूछता है, असग़री चाँदमल के हर दिन घर आने का मक्सद क्या हो सकता है? अतः नसीब खाँ कहता है कर्ज लिए है क्या? न कहती असग़री। अंततः पता चलता है कि बेटा फत्तू ने चाँदमल से क़र्ज लिए है और उसके साथ–साथ फत्तू की पत्नी पारो की मोह में घर आना। तथा फत्तू का नाम बहाना है और पारो की मोह में

---

[13] बाबल तेरा देस में'– भगवानदास मोरवाल, (पृ.–22–23)

देखने आना। असग़री चाँदमल पर बहुत चिढ़ती है साथ–साथ गुस्सा होती है पर अंत में कुछ नहीं कर पाती।

अन्य दिनों की तरह चाँदमल मग़रिब की नमाज के बाद फिर पहुँच गया। फाइन का सफेद तहमद, पाँवों में कुरम की ताजा–ताजा पॉलिश की गई जूतियों के साथ–चमेली के इत्र की खुशबू से असग़री का पूरा चौका महक उठा। इस बीच चाँदमल खाट तक पहुँच गया। चाँदमल ने खाट बिछाने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि पारो ने उसे रोकते हुए बोली डोकरा (बूढ़ा) अभई में शराफत के साथ कह रही हूँ नहीं तो कहते–कहते रूक गई पारो। नहीं तो क्या करेगी? तमतमाते हुए पूछा चाँदमल ने। मैं पूरा मोहल्ला इकट्ठा कर दूँगी। चाँदमल कहता है कि मोहल्ले को कहाँ इकट्ठा करेगी। देख डोकरा बात बढ़ाने में कोई फ़ायदा ना है। अंत में पारो कहती है कि अपने आप चले जाएँगें या मैं धक्का देके बाहर करूँ चाँदमल कहता है कि तुम धक्का देखे बाहर करेंगी थोड़ा तो हाथ लगाके देख मेरा। पारो–पारो नहीं रही शेरनी की तरह चाँदमल को इतनी तेज से झपटी कि जब तक वह कुछ समझ पाता, सिर पर बँधे फेंटे का एक सिरा पारो के हाथ में था और बाकी जमीन पर गिरकर दूर तक खुलता चला गया। चाँदमल ने ऐसी कल्पना ही नहीं की थी।

अंततः पारो चिलाने लगी। देखते ही देखते पूरा मोहल्ला इकट्ठा हुआ। इसी बीच असग़री भी शामिल हो गयी। असग़री सारे मुहल्ले के साथ कहने लगी की मेरी बहू को राँड़ समझ रहा है क्या? तब तक उसके तीनों लड़के तथा उनकी पत्नियाँ जुम्मी और मजीदन भी आ पहुँची। अंततः गाँव के मुखिया धनसिंह, नसीब खाँ, जैतुनी सभी पहुँच गये। धनसिंह समझाते हुए कहता है कि चाँदमल ''हिन्दु बुढ़ापा में जाके बिगड़े है और मुसलमान बुढ़ापा में आके सुधरे है''[14] पता तुम तो इस कहावत को उल्टी करके दिखा दी। धनसिंह शालीनता के साथ चाँदमल को पूरे मुहल्ले के सामने शर्मिदा कर दिया। उसे देखकर सभी को विश्वास हो गया कि यदि चाँदमल में थोड़ी सी भी इंसानियत होगी तो भविष्य में ऐसी हरकत करने से पहले उसे कई बार सोचना पड़ेगा इसके बाद चाँदमल असग़री तरफ आना तो दूर रहा, वह उसके घर की ओर पाँव करके जाने से भी गनीमत है।

---

[14]बाबल तेरा देस में'– भगवानदास मोरवाल, पृ.–41

यह विमर्श नहीं है समृद्ध संसार के स्त्रियों की मुक्ति का, जो उन्हें कभी और कहीं भी मिल सकती है। अपितु यह अपनी निजता और शुचिता बचाए रखने का लोमहर्षक उपख्यान भी है। लोक जीवन और किस्सागोई की तरंगों से लबरेज यह ऐसे जीवंत समाज का आख्यान भी है, पाठकों को कथा रस के विभिन्न आस्वादों तथा अपने अभिनव कला–पक्ष से मुठ भेड़ कराता है। 'बाबल तेरा देस में' एक ऐसा उपन्यास है जो रेत माटी से सने पाँवे को खेतों की ऊबड़–खाबड़ मेड़ों पर जेठ की तपती धूप में चलने जैसा अहसास होता है।

3. 'रेत'

भगवानदास मोरवाल का तीसरा उपन्यास 'रेत' है। इसमें उन्होंने हरियाणा और राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्रों में बसने वाली कंजर जन–जनजाति के जीवन–संघर्ष और द्वंद्व को उभारने की कोशिश की है। कंजर जनजाति का इतिहास, रीति–रिवाज और उसके सामाजिक जीवन का प्रामाणिक चित्रण करने के लिए लेखक ने बड़े परिश्रम पूर्वक शोध किया है जो निश्चित रूप से प्रशंसनीय है।

लेखक के अनुसार औपनिवेशिक प्रशासन के अंग्रेजी अफ़सर किंग जेम्स स्टीफन ने 1871 में पहली बार भारत की इन जनजातियों को अपराध और जरायम पेशा घोषित करते हुए कानून बनाया था। क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट (Crimanal Tribs Act) 1924 के तहत ऐसी 47 जरायम पेशा जातियाँ नोटिफाई की गई थीं। कहना न होगा कि आजादी के बाद भी तथा कथित सभ्य समाज के धनी–मानी और बाहुबली लोगों द्वारा तथा सर्वोपरि पुलिस द्वारा इन जनजातियों का नृशंस दमन जारी रहा। उनके चरित्र पर लगा धब्बा अभी भी नहीं मिटा और न ही उनके प्रति समाज का दृष्टि कोण बदला।

आमतौर पर यह माना जाता रहा है, जैसा कि लेखक ने अपने उपन्यास में दिखाया भी है कि कंजर जनजाति का मुख्य पेशा अवैध शराब बनाना और अपने समाज की कुँवारी लड़कियों द्वारा वेश्यावृत्ति कराना ही रहा है। इसके साथ ही यथाअवसर चोरी और नकाब जनी के अपराध भी उनके पेशे में शुमार किए जाते रहे

हैं। जैसे मेवों की संस्कृति और रीतिरिवाज हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के मिलेजुले रीतिरिवाज रहे हैं, वैसे ही कंजर जनजाति में भी हिन्दु और मुसलमान दोनों मिलते हैं। हालांकि मान्य और प्रचलित धार्मिक परंपराओं और देवी–देवताओं से कंजरों का बहुत वास्ता नहीं रहा। उनके अपने अलग जनजातीय देवी देवताएँ हैं। इनमें सबसे बड़े उनके कुलदेता 'माना गुरू' माँ नलिन्या, मारी, प्रभा और भुइयाँ आदि हैं। लेखक ने यह दिलचस्प किस्सा भी इसमें शामिल किया है कि किस तरह एक फरार अपराधी भूरा की कब्र भूरापीर की मजार में बदल जाती है और जब धर्म धंधे से जुड़ जाता है तो वहाँ सालाना उर्स भी शुरू हो जाता है। यह लोक विश्वास की धार्मिक रूढ़ियाँ हैं, जिसके प्रति लेखक सचेत है।

माना गुरू और माँ नलिन्या के संतान इस कंजर जनजाति की त्रासदी जीवन गाथा उकेरने के लिए लेखक ने गाजूकी नामक कंजरों की बस्ती, विशेष रूप से उसके कमला सदन के एक परिवार को आधार बनाया है। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है कि इस जनजाति की अविवाहित लड़कियाँ वेश्यावृत्ति का पेशा करती हैं और पुरूष प्रायः कोई भी काम धंधा नहीं करते। इस जनजाति में मातृसत्तात्मक व्यवस्था के अवशेष मिलते हैं; जिसके सत्ता शीर्ष पर कमाई करने वाली यही अविवाहित लड़कियाँ होती हैं जिन्हें खिलावड़ी कहा जाता है लेकिन विपर्यय यह है कि इसी समाज की लड़कियाँ शादी के बाद भाभी कहलाती हैं, जिनके लिए तो यह पेशा वर्जित होता है किन्तु उनकी स्थिति परिवार में दयनीय खटने वाले नौकरों जैसी होती है। इस कंजर जनजाति के अंतर्विरोध को लेखक ने केंद्र में रखा है, उसे ओझल नहीं किया है।

कमला सदन के घर में माँ–बेटियाँ की तीन पीढ़ियाँ हैं। कमला बुआ, उनकी बेटियाँ सुशीला और माया तथा इन दोनों बहनों की बेटियॉ रूक्मिणी, वंदना और पूनम। यही कमला सदन का इतिहास और भूगोल ही नहीं; आर्थिक आधार भी है। दूसरी तरफ संतो भाभी और अनीता भाभी है, जो जानवरों की तरह इनकी और इनके मेहमानों की सेवा–टहल में खटती रहती हैं। संतो भाभी की बेटी पिंकी से पूछा जाता है कि वह क्या बनना चाहती है तो वह भाभी के बजाय बुआ बनने का

फैसला सुनाती है, यह इस समाज का चौंकाने वाला अंतर्विरोध है। यहाँ गौर करने की बात यह भी है कि यदि कमला सदन में एक साथ, इस कंजर जनजाति की सात्विक परंपरा एक तरफ है तो दूसरी तरफ उस परंपरा को नष्ट करने का प्रचलन भी, यहाँ तक कि भाभियों का विद्रोह भी।

इसी पृष्ठभूमि में इस उपन्यास में रूक्मिणी की कहानी कही गई है जो यह मानती है कि ''अब जाकर पता चला है कि ताकत चाहे दौलत की हो या रूप और देह की, वह कितनी बड़ी होती है। अगर इनमें से एक भी आपके पास है तो समझो आपसे बढ़ा ताकतवार कोई नहीं है....... और अगर सारी है तो कहना ही क्या......मेरे पास आज तीनों है।''[15] रूक्मिणी यह बात एम.एल.ए. का चुनाव जीतने के बाद राज्य की अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण उपमंत्री बनने के बाद अपने सखा 'घनश्याम कृष्ण' (वैद्यजी) से कहती है। अपनी देह के बल पर यह सब हासिल करने का गुरूमंत्र उसे भगवा पार्टी की राजनीतिक कार्यकर्ता और समाज सेविका सावित्री मल्होत्रा देती है, जो उससे कहती है कि अपनी देह की तू खुद मुख्तार है और इसी से अपना भाग्य पटल सकती है।

लेकिन रूक्मिणी की समस्या यह है कि वह सावित्री बाई जी से पूछती है कि क्या बिना इस देह के भाग्य नहीं पलटा जा सकता, क्योंकि इसी देह से तो मैं पीछा छुड़ाना चाहती हूँ। रूक्मिणी अपना भाग्य पलटती है और इसी देह से भी पीछा छुड़ाने में सफल हो जाती है, लेकिन बड़ी निःसंग निर्ममता से अपनी भांजी पिंकी की बलि चढ़ाकर ही वेश्यावृत्ति करने वाली एक खिलावड़ी से लेकर राज्य की उपमंत्री बनने तक रूक्मिणी की पूरी कहानी बेशक और कहीं–कहीं दिलचस्प है। इस समूची कथा में राजनीतिक पार्टियों उनके जनसंगठनों के काम–काज, चुनावी उम्मीदवारों की चयन प्रक्रिया और कुल मिलाकर कहें तो राजनीति जैसे पेचीदा और जटिल परिदृश्य का लेखक ने जिस तरह वर्णन किया है, आज की राजनीति का पर्दाफाश ही होता है।

---

15 .भगवानदरस मोरवाल– रेत– पृ. 323

रूक्मिणी जैसी अत्यंत संभावनापूर्ण पात्र के चरित्र का विकास लेखक वैसे तेजस्वी और क्रांतिकारी चरित्र में बिल्कुल भी नहीं ढाल पाया है जैसा कि उसका संवेदनात्मक उद्देश्य रहा होगा। देह को आधार बनाकर भाग्य बदलने के फैसले के साथ ही रूक्मिणी की आँखों में अपने बेटे गुड्डू का चेहरा तैर जाता है। यही रूक्मिणी के चरित्र का और साथ इस उपन्यास का भी सबसे जबर्दस्त और निर्णायक मोड़ है। उपन्यास का सबसे संभावनापूर्ण और निर्णायक चरित्र यह गुड्डू ही है जो उपन्यास में अपनी बहुत हल्की सी उपस्थिति दिखाकर भी अमिट प्रभाव छोड़ता है। इस नाजुक मोड़ से ही रूक्मिणी के सारे चिंतन और कर्म के केंद्र में गुड्डू ही मौजूद रहता है; भले ही उसके अवचेतन में अत्यंत अपरोक्ष रूप से। हालांकि क्षेत्र विशेष की बोली और खासकर कंजर जनजाति के लोगों में प्रयुक्त होने वाले खास शब्दों और मुहावरों को प्रामाणिक बनाने का आपने भरसक प्रयास किया है। जिस तरह उपन्यास में जगह–जगह घटिया, जासूसी उपन्यासों की तरह 'रहस्य' और रोमांच पैदा करने की कोशिश की गई है, फिर चाहे वह वर्णित स्थितियाँ हो या घटनाक्रम अथवा पात्रों के बीच के संवाद,प्रभावी नहीं लगते। औपन्यासिक प्रतिभा और कला के साथ कंजरों के जीवन–संघर्ष के बारे में किए गए शोध के लिए लेखक का परिश्रम प्रशंसनीय है कहना न होगा कि यह उपन्यास बेहद पठनीय है।

1.3 अन्य कृतियाँ

1.3.1 कहानियाँ

भगवानदास मोरवाल हिन्दी के उन कुछ युवा कथाकारों में हैं जिन्होंने निरंतर साहित्य साधना से समकालीन कथा साहित्य में तेजी से अपनी पहचान बनाई है। ऐसे साहित्यकार की अस्मिता क्रमशः ऊपर उठती गयी है। वे केवल उपन्यास में नहीं अन्य विधाओं में भी इनका नाम बहुत मशहूर है। उनकी कहानियों में जनजातीय स्त्रियों का शोषण एवं दमन दिखाई देता है। जिससे मुक्ति का वे आगे चलकर सुझाव भी देते है। साथ ही वे हाशिए के समाज से सभ्य समाज में आने की बात भी कहते हैं। कहने का मतलब यह है कि एक नये समाज की नींव डालने की बात कहते है, जो हर तरह के शोषण से मुक्त हो। उपर्युक्त बाते उनकी कहानियों में दिखाई देते है। उनकी प्रमुख कहानीयाँ सिला हुआ आदमी, सूर्याहस्त से पहले, अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार, सीढ़ियाँ, माँ और उसका देवता आदि। उनकी कहानियों में उपर्युक्त बाते दिखाई देती हैं।

1.3.2. कविताएँ

मोरवाल जी की कविताओं के समाज में पुरूष वर्चस्व मुस्लिम समाज में स्त्रियों की बहुआयामी विसंगतिपूर्ण पीड़ादायक स्थिति आदि को पूरी नग्नता के साथ पर्दाफाश किया गया है। आगे चलकर कुछ कविताएँ आधुनिक सत्तातंत्र में हाशिए पर समाज के प्रति सरकार के कपट पूर्ण रवैये को स्पष्ट करती हैं। उनकी कवितायें 'नागार्जुन', एवं 'रघुवीर साहय' की कविताओं की दुबारा याद दिलाती हैं। कहने का मतलब है कि नागार्जुन की कविताएँ किसान, मजदूर गाँव एवं गली की बात कहते हैं। परंतु मोरवाल जी की कविताएँ हाशिए पर समाज की तकलीफों को व्यक्त करती हैं। यहाँ दोनों की कविताओं का भाव एक ही है केवल भाषा तथा संदर्भ बदल गया है। उसी प्रकार रघुवीर सहाय की कविताएँ 'लाड़की बड़ी होगई' और 'सीढ़ियों पर धूप में' आदि कविताओं में स्त्रियों की व्यथा–कथा को व्यक्त किया गया है और मोरवाल जी ने अपनी कविता संग्रह में मुस्लिम समाज की स्त्रियों के

शारीरिक एवं मानसिक कष्ट को अभिव्यक्त किया गया है। उपर्युक्त बाते उन्होंने कविता संग्रह 'दोपहरी चुप है' (1990) में व्यक्त किया है।

अंततः निष्कर्ष के रूप में कहा जाए तो मोरवाल जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से हाशिए के समाज और मुस्लिम समाज की स्त्रियों की दोहरी कष्टपूर्ण स्थितियों को नवीन भावभूमि के रूप में चित्रित किया है।

1.3.3. बच्चों की रचनाएँ

मोरवाल जी ने बच्चों के मानसिकता को मनोवैज्ञानिक (Psychology) ढंग से तब्दील करने के लिए 'कलियुगी पंचायत' नामक कृति भी लिखी है। ये कृति बच्चों के मन को दिलचस्प ही नहीं लगती बल्कि उनकी चिंतन शक्ति को सक्रिय बनाने में मदद करती हैं। मोरवाल जी उपन्यास, कहानी, कविता आदि सभी विधाओं में उनकी एक अलग पहचान है।

1.4 जनजातीय समाज : मोरवाल का स्थान

''आधुनिक जनजातीय साहित्य हिन्दी के मध्यकालीन निर्गुण संतो से प्रभावित हुआ। प्रेमचंद, रांगेय राघव, कमलेश्वर, यादवेंद्र शर्मा, 'चन्द्र' द्वारा रचित साहित्य से पोषित होता हुआ 'मुन मगन सागर' की 'मीन पुराण' और पुराण भूमिका से प्रेरणा पाकर गति पकड़ने लगा। मुनि 'मगन सागर' ने जनजातीय समुदाय में मीणाओं को ख्याति प्रदान की जनजातीय साहित्य को गति देते हुए शंकर लाल मीणा, हरिराम मीणा, मीरा रावत, चंदालाल मीणा, बलराम मीणा आदि रचनाकारों ने शिखर तक पहुँचने का पुनीत कार्य किया।''[16] भारतीय जनजाति विशिष्ट को आधार बनाकर लिखे गये हिन्दी उपन्यास में वृन्दवनलाल वर्मा के 'कचनार' (1947) 'मृगनयनी' (1950) रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' (1956), राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' और 'सूरज किरन की छाँव,' राकेश वत्स के 'जंगल के आस–पास' संजीव के 'जंगल जहाँ शुरू होता है, श्रीप्रकार मिश्र के 'जहाँ बाँस फूलते हैं'', मनमोहन पाटक के 'गगन घटा घहरानी', तेजिंदर के 'काला पादरी मोरवाल के 'काला पहाड़', मैत्रेय

---

16 . युद्धरत् आम आदमी–पत्रिका सं–रमणिका गुप्ता–श्रवण कुमार मीणा–मई 2009.

पुष्पा के अल्मा कबूतरी, राकेश कुमार सिंह के 'पठार पर कोहरा' भगवानदास मोरवाल के 'रेत' 2008 को एक अलग कड़ी के रूप में देखना चाहिए।

भगवानदास मोरवाल हिन्दी के कुछ युवा कथाकारों में है। जिन्होंने निरंतर साहित्य साधना से सकमालीन कथा साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाई है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के लगभग अंतिम वर्षो में उनका उपन्यास 'काला पहाड़' 1999 में आया था। जिसमें उन्होंने मेवात की भौगोलिक–सांस्कृतिक अस्मिता को– जो संपूर्ण राष्ट्र में व्याप्त अन्याय विडंबना और विसंगति का प्रतीक को मुस्लिम परिवेश से उठाया है, और फिर नई सहस्त्राब्दी में पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देते स्त्री–मुक्त का शंखनाद अपने वृहद उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' किया है।

मोरवाल अपने उपन्यास की विषय वस्तु पर पर्याप्त शोध ही नहीं करते हैं, बल्कि उस समाज का अंग बनकर उससे घुलते–मिलते उस जीवन की त्रासदी को गंभीरता से उठाते हैं। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की संरचना में उपन्यास के स्थापत्य के बीच हमेशा एक नीच ट्रेजेडी (दुखांत) है। लेकिन पूरी–पूरी विश्वसनीयता और पाठनीयता लिये हुए मोरवाल के कथा लेखन के केंद्र में हमेशा हाशिए का वह उपेक्षित, प्रताड़ित और शेषित समाज, खासकर स्त्री होती है जिसकी ओर से संभ्रांत समाज ने मुँह फेर लिया है। इस समाज के जीवन को प्रस्तुत करते हुए वे भरसक कोशिश करते हैं कि इस अभिशप्त समाज को मुक्त मिले और अपनी कवित्वपूर्ण संवेदनशीलता से पाठकों का मन नहीं दृष्टिकोण भी बदल देते हैं।

मोरवाल जी समकालीन कथा साहित्य में एक नयी भाव भूमि को जन्म दिया है। उनका साहित्य पाठकों के जिस्म में अंग–अंग तक उसका असर पड़ने लगा, इतना ही नहीं अपनी चिंतन शक्ति एवं विचारों को तब्दील करने मे भी सक्षम रहा। मोरवाल जी का साहित्य शोषण रहित समाज को निर्माण करने मे एक अंग बनकर सामने आया और पाठकों को सही रास्ता तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका है।

द्वितीय अध्याय

II. जनजातीय जीवन : इतिहास एवं संस्कृति

2.1 जनजातीय जीवन : अर्थ ,परिभाषा, स्वरूप एवं अवधारणा

2.2 भारतीय इतिहास में जनजातियाँ

2.3 भारतीय संविधान में जनजातियों की स्थिति

2.4 जनजातीय समाज एवं जीवन

2.5 भारत की प्रमुख जनजातियाँ

2.6 भारत की अपराधी जनजातियाँ

2.7 अपराधी जनजातियों की छवि : कानूनी एवं राजनीतिक स्तर

2.8 कंजर जनजाति

निष्कर्ष

II. जनजातीय जीवन : इतिहास एवं संस्कृति

2.1 जनजातीय जीवन : अर्थ ,परिभाषा, स्वरूप एवं अवधारणा

विभिन्न संस्कृतियों का अद्‌भूत संगम भारतीय संस्कृति की विशेषता है। यहाँ धर्म संस्कृति का प्रमाण माना जाता रहा है। वाहक के रूप में संस्कृतियाँ हमेशा एक दूसरे को प्रभावित करती आयी है, अतः किसी संस्कृति विशेष का मूलभूत रूप स्पष्ट नहीं होता। परन्तु जनजातीय संस्कृतियाँ भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अपना अस्तित्व बनाए रक सकी हैं। मानव के सांस्कृतिक विकास संबंधी अध्ययन के आरंभ से ही मानववेत्तओं का झुकाव आदिम समाज की ओर रहा है। ''जनजातियाँ आदिम समाज का सटीक उदाहरण मानी जाती हैं। विश्व के अनेक भागों में रहने वाले उन आदिवासी समुदायों को जनजाति कहा जाने लगा जो सांस्कृतिक दृष्टि कोण से तत्कालीन पश्चिमी की तुलना में अत्यंत पिछड़े हुए थे।''[1] इन्हें ठक्कर बापा तथा लैसी ने 'आदिवासी' कहा है। क्योंकि इन लोगों के मतानुसार ये देश के आदि–मनुष्य हैं। इन्हें आदि मनुष्य इसलिए कहते हैं कि ये जंगलों, पहाड़ों पर रहते हैं। इन्हें आदिम जाति भी कहा जाता है क्योंकि सभ्यता की दृष्टि से ये प्रारंभिक अवस्था में हैं। नंगे घूमते, जंगलों में झोपड़ियों बनाकर रहते हैं। सभी आदिवासी न एक मूल के हैं, न एक तरह की उनकी सामाजिक संरचानएँ हैं, न एक तरह के उनके रीति–रिवाज हैं। भौगोलिक परिस्थिति और प्राकृतिक स्थितियों के अनुसार उनमें बहुत सी बातों में भिन्नताएँ दिखाई देती हैं जिसके कारण उन्हें एक समूह मानने में कठिनाइयाँ आती हैं।

प्रत्येक जनजातीय समूह की अपनी अलग संस्कृति, प्रथाएँ, रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान, तीज–त्यौहार, अलग कानून, सीमित भूभाग आदि होते हैं। जाति की दृष्टि से भारत की जनजातियों का बहुत महत्त्व है।

जनजाति की अवधारणा को दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जाहिर है कि, जो सभ्य समाज जिसमें हम लोग रहते हैं, उससे भिन्न जो जन–समूह जंगलों एवं गाँवों के बाहर जो निवास करते हैं; उस जनसमूह को 'जनजाति' या 'आदिवासी' कहते

---

[1] जनजातीय भारत– डॉ. एन.आर.एन. श्रीवास्तव पृ.–1.

हैं। उनका एक अलग सीमित क्षेत्र, पंचायत, अलग कानून, अलग शिक्षा–व्यवस्था आदि है। अतः उनकी सभ्यता का विकास लगभग प्रारंभिक अवस्था में है।

भारतीय समाज के कुछ विशेष समूहों को जनजातीय रूप में वर्गीकृत करने की परंपरा 19वीं सदी में अंग्रेज' शासकों द्वारा आरंभ की गयी और ऐसे समूहों के लिये एक से अधिक लोक प्रिय संबोधन प्रचलित रहे हैं यथा–आदिवासी, वन्यजाति, पर्वतवासी, वनवासी और आदिम–जाति स्वंतत्र भारत के संविधान में वर्णित 'अनुसूचित जनजाति की सूची का आधार वही है जिसे विदेशी शासकों ने तैयार किया था। सूची तैयार करते समय जनजाति के मानवशास्त्रीय परिभाषा पर विशेष ध्यान न देकर केवल उन्हें सम्मिलित किया गया जो हिन्दु वर्ण–व्यवस्था के बाहर थे। साथही सदियों से उपेक्षित रहें थें। ''भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366 (25) के अनुसार जनजाति से तात्पर्य उन जनजातीय समुदाय अथवा जनजातीय समुदायों के अंशों या समूहों से है जो संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजातियों के रूप में माने गये हैं। इसी अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति के द्वारा आम सूचना जारी की जाती है। संसद किसी भी जनजातीय समुदाय अथवा उसके अंश को अनुसूचित जनजातियों की सूची से निकाल सकती है या उसमें जोड़ भी सकती है''[2]

यहाँ हम वर्तमान भारत वर्ष की जनजातियों की संस्कृति के वर्णन से संबंधित हैं, अतः इतिहास की घटनाओं को इंगित मात्र करते हुए हम वर्तमान समय से जनजाति'' के नाम की अवधारणा के स्पष्ट किया है। यहाँ 'जनजाति' अंग्रेजी के 'ट्राइब' शब्द का हिन्दी पर्याय है जो भारतीय संविधान के आने के बाद विशेष रूप से प्रचलित हो चुका है। 'जनजाति' की परिभाषा विभिन्न मानव शास्त्रियों एवं समाज शास्त्रियों ने दी है।

---

[2] जनजातीय भारत– डॉ. एन.आर.एन श्रीवास्तव पृ.–144.

जनजातीय की महत्वपूर्ण परिभाषाएँ

1. गिलिन और गिलिन के अनुसार

''जनजाति किसी भी ऐसे स्थानीय समुदायों के समूह को कहा जाता है जो एक सामान्य भूभाग पर निवास करते हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो, और एक सामान्य संस्कृति का व्यहार करता हो।''[3]

2. इम्पिरियल गजेटियर के अनुसारः–

''आदिवासी जनजाति परिवारों के एक ऐसे समुदाय का नाम है जिसक एक समान नाम हो, समान बोली हो, जो एक समान भूभाग पर रहता हो था उस भू–भाग को अपना मानता हों, और जो अपनी ही जाति के भीतर ही विवाह करता हों।''[4]

3. जेकब्स और स्टर्न के अनुसारः–

''एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदायों का एक ऐसा समूह जिसकी समान भूमि हो, समान भाषा हो, समान संस्कृति हो और जिस समुदाय के व्यक्तियों का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के साथ ओत–प्रोत हो जनजाति कहलाता है।''[5]

4. रिचार्ड के अनुसारः–

''समूहों की श्रृंखला जब बढ़ जाती है तब उसका अंत राष्ट्र में होता है। समूह का यह विकास प्रायः आदिम जातियों में पाया जाता है। इन आदिम जातियों को हम जनजाति भी कहते हैं यह एक ऐसे समुह का नाम है जो आर्थिक दृष्टि से

---

[3] भारत की जनजातीय संस्कृति–विजय शंकर उपाध्याय, विजय प्रकाश शर्मा–पृ.–2
[4] जनजातीय समाजशास्त्र–डॉ. श्रीनाथ शर्मा –पृ.–1.
[5] भारत की जनजातियाँ–शिवतोष दास–पृ.–75

आत्मनिर्भर रहता है, समान भाषा बोलते हैं तथा आपत्ति के समय सब मिलकर एक हो जाते हैं।''[6]

5. आर.सी. मजूमदार के अनुसार

भारत के प्रसिद्ध मानव शास्त्री डॉ. मजूमदार ने जनजाति की अत्यंत रोचक एवं सुंदर परिभाषा की है। उनके अनुसार ''आदिवासी जनजाति परविारों तथा पारविारिक वर्गों का एक ऐसा समूह है जो सामान्य नाम धारण किये हुए हैं। इसके सभी सदस्य एक ही भूमि पर वास करते हैं और एक ही भाषा–भाषी विवाह की प्रथाओं तथा कारोबार संबंधी एक ही नियम का पालन करते हैं। वे आदान–प्रदान संबंधी पारस्परिक व्यवहार को विकसित करते रहते हैं। साधारणतया आदिवासी जनजाति अंतर्विवाह सिद्धान्त का समर्थन करती है उसके सभी अपनी ही जनजाति के अंतर्गत विवाह करते हैं। कई गोत्र मिलकर आदिवासी जनजाति की रचना करते हैं। प्रत्येक गोत्र के सदस्यों का परस्पर रक्त संबंध जुड़ा होता है। इनमें या तो अनेक लघुवर्ग बृहतवर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं अन्यथा उनका वंशपरंपरागत सरदार होता है। इसी दृष्टि से आदिवासी जन जाति को एक राजनीतिक संघ भी माना जाता है।''[7]

6. ''डॉ. रिवर्स के अनुसारः–

''आदिवासी जनजाति एक ऐसा सरल सा समूह है जिसके सदस्य एक बोली बोलते हों और जो युद्ध आदि के समय सम्मिलित रूप से कार्य करते हों।''[8] रिवर्स की परिभाषा में सामान्य निवास क्षेत्र को जनजाति का लक्षण निरूपित नहीं किया गया। जब की अन्य मानव शास्त्रीयों ने सामान्य एवं निश्चित भूभाग को जनजातियों का विशेष लक्षण माना है।

प्रख्यात विद्वान डॉ. मैनेजर पाण्डेय अपने एक साक्षात्कार में आदिवासियों को परिभाषित करते हुए कहा हैं कि ''आदिवासियों के जीवन, उनकी सामाजिक

---

[6] भारत की जनजातियाँ– डॉ. शिवतोष दास–पृ.–75.

[7] . भारत की जनजातियाँ– डॉ. शिवतोष दास पृ.–75

[8] जनजातीय भारत–डॉ.एन आर एन श्रीवास्तव–पृ.–4.

संरचना, उनकी संस्कृति आदि को ध्यान में रखे, तो सुविधा के लिए यह कहा जा सकता है कि इस देश में बड़ी संख्या में, और अगर आप भारत के नकशे को देखे; तो बहुत बड़े भूभाग में जो लोग, मुख्यधारा, तथाकथित मुख्य धारा से अलग रहते हैं, जो अपनी जिंदगी मध्यकालीन और आधुनिक सामाजिक प्रक्रियाओं से नहीं चलाते, बल्कि पुरानी प्रक्रिया से चलाते हैं।''[9]

उपर्यक्त परिभाषाएँ जनजातीय जीवन का अर्थ, स्वरूप और अभिप्राय को स्पष्ट करती है।

2.2 भारतीय समाज के इतिहास में जनजातियाँ

तथाकथित आदिवासी, स्वंतत्रता से पूर्व भी उनका इतिहास है। लोगों ने अलग–अलग ढंग से इन्हें समझा तथा इनके बारे में विभिन्न राय बनाई इसके फलस्वरूप भारत की अधिकतर जनता की राय इन आदिवासियों के बारे में भान्तिपूर्ण आश्चर्यजनक तथा काल्पनिक रही है। आदिम समूह सरल तथा प्रसन्नचित लोग हैं। इन कल्पनाओं के पीछे भूखमरी, उपेक्षा, बीमारियाँ तथा शोषण जैसी तमाम कड़वी सच्चाइयाँ भी हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व सर्वप्रथम अंग्रेजी शासकों ने ही जनजातीय क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया। उपरोक्त लिखित काल्पनिक बातों और अंधविश्वासों को बढ़ावा भी इन्हीं अंग्रेजों ने दिया। ऐसा उन्होंने अपने निहित स्वार्थों के लिए किया। इन अंग्रेजों ने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि ''आदिवासी'' (अनुसूचित जनजातियाँ) शेष भारतीय जनसमूह से अलग रहें; क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य इन जनजातियों को राष्ट्रीय आंदोलन से अलग रखना चाहता था इसका कारण था कि इन जनजातियों की शक्ति एवं क्षमता, जो किसी भी राष्ट्रीय आंदोलन के लिए अत्यंत लोभकारी सिद्ध हो सकती थी। इन जनजातियों को अलग करके उनके रहने के स्थान को प्रतिशिद्ध क्षेत्र घोषित कर दिया। इस कारण प्रारंभिक स्थितियों में विदेशी शासक और ईसाई मिशनरी ही इन क्षेत्रों में जा सकते थे।

---

[9] 'वतर्मान साहित्य' अप्रैल 2009–कुँवरपालसिंह– नमिता सिंह पृ.–38.

स्थानीय आदिवासियों से निपटने का प्रथम प्रयास भारत में विदेशी शासकों द्वारा राजमहल पहाड़ के पहाड़ियों और मलेरों से संबंधित था। इसी प्रकार लूटमार करने वाले मल पहाड़ियों के चारों ओर सैनिक के प्रवृति के लोगों का घेरा बन गया। धीरे–धीरे वहाँ पर एक सैनिक दल का गठन हुआ। इस दल के अधिकारियों को चुनकर एक न्याय समिति गठित की गयी तथा एक न्यायालय की स्थापना की गयी। इस न्यायालय की उपयोगिता से उत्साहित होकर सरकार माँग की गयी कि पहाड़ी क्षेत्रों को साधारण न्यायालय अधिकार क्षेत्रों से पृथक कर दिया जाए। 1782 ई. में पहाड़ी क्षेत्रों को साधारण न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से मुक्त कर दिया। एक सेशन कोर्ट की भी स्थापना की गयी जिसमें जनजातियाँ नेताओं को भी बुलाया जाता था। यह न्यायालय वर्ष में दो बार सभी अपराधों के मुकदमों पर विचार–विमर्श करता था। यह समिति 'पहाड़ी परिषद्' के नाम से जानी जाने लगी तथा यह परिषद् सभी प्रकार के नकद जुर्माने लगाने या निरस्त करने का अधिकार भी रखती थी।

इस प्रकार समस्त पहाड़ी क्षेत्र एक हो गये जिसे विशेष स्तर दिया गया। पूरे क्षेत्र को दामन–ए–कोह का नाम दिया गया। इस व्यवस्था से पहाड़ियों मलेवर बिल्कुल शांत हो गये तथा यह सभी विनियम 'रेगुलेशन' ऑफ 1796 के रूप में नियम बना दिये। समय के साथ–साथ पहाड़ी परिषद् की प्रतिष्ठा कम होती गयी और 1796 के रेगुलेशन 1827 के रेगुलेशन ने रोक लगा दी।

इसी समय शोषण के शिकार कुछ और जनजातियों ने विद्रोह कर दिया। इस संदर्भ में 'सिंह का विद्रोह 1831' खोंड़ विद्रोह 1846 तथा प्रसिद्ध संथाल विद्रोह 1855 प्रमुख हैं। भारत की अंग्रेजी सरकार ने 1850 से 1890 के बीच आसाम, नागालैंड तथा जैन्तियाँ पर अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भेजी। इसके अतिरिक्त उन्नीसवीं शब्तादी के अन्तिम दशक से बीसवीं शब्तादी के प्रथम दशक तक लुशाई पहाड़ी नागा पहाड़ियों तथा अवोर की ओर भी दंडित करने वाले दलों को भेज ने की प्रक्रिया चलती रही। इन सभी अस्तवेस्तता के कारण ये प्रौद्योगिकी तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में अधिक विकसित पड़ोसियों द्वारा शोषण के विरोध में असंतोष प्रकट करना पड़ा।

ऐसी स्थितियों में अंग्रेजी सरकार ने इन जनजातियों के जीवन तथा रूचियाँ को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से इन्हें विशेष क्षेत्र में विभाजित करने की नीति निर्धारित की। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए 1814 ई. में एक अधिनियम पारित किया गया। भारत सरकार के अधिनियम 1919 की धारा 52ए के अंतर्गत यह क्षेत्र पुनः संघटित किये गये। इस अधिनियम के अंतर्गत अधिकारियों की नियुक्तियों का प्राविधान था। इन नियुक्तियों का उद्देश्य था दीवानी तथा फौजदारी मामलों में न्याय, सार्वजनिक राजस्व वसूली, कर निर्धारण तथा किराये से संबंधित सभी विषयों तथा अनुसूचित जिलों का प्रशासन था। स्वातंत्रोत्तर आंदोलन की बढ़ती गति के साथ–साथ अंग्रेजी शासकों की चिंताएँ भी बढ़ी। यह भी जनजातियों को राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग रखने के कार्य। भारतीय वैधनिक कमीशन (साइमन कमीशन) ने सलाह दी की वित्तीय तथा संवैधानिक आधारों पर जानजातीय, क्षेत्रों का उत्तरदायित्व केन्द्र पर होना चाहिए। आनेवाले वर्ष में सन् 1947 तक बहुत से अधिनियम व विनियमों की घोषणा हुई। तथा विभिन्न परिवर्तन व सुधार लाये गये। 1935 में जनजातियों पर विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से एक उपयुक्त प्रावधान किया गया। जिसके अंतर्गत जनजातीय क्षेत्रों को पूर्ण व आंशिक रूप से अलग क्षेत्रों में परिवर्तित किया गया।

सन् 1947 के स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जनजातीय कल्याण की भावना ने पूरे देश में व्यापक रूप से बनाया। 26 जनवरी 1950 की संविधान सभा में पारित विभिन्न प्राविधानों द्वारा इसकी पृष्टि हुई। इन प्राविधानों से जनजातीय जनसंख्या को राष्ट्र की मुख्य धारा में मिलाने के कार्यों को बल मिला। जनजातीय लोगों को भारत के शेष जनसंख्या के स्तर पर आने के उद्देश्य से संविधान में इन जातियों को 10 वर्षों के लिए विशेष सुविधायें तथा सुरक्षा प्रदान की। इस अवधि में अब तक वृद्ध की जाती रही है।

जनजातियों की सुरक्षा तथा विकास के उद्देश्य से 1951 में एक जनजातीय काल्याण विभाग की स्थापना की गई तथा संविधान से विभिन्न प्रावधानों के आधार पर प्रशासन की नवीन सुनिश्चित की गई।

''अनुसूचित क्षेत्रों की रचना दो स्पष्ट उद्देश्यों के आधार पर की गई थी। पहला जनजातियों को उनके अधिकारों के प्रयोग में सहायता करना तथा दूसरा

उद्देश्य क्षेत्रों के विकास व अनुसूचित जनजातियों की अधिक शैक्षणिक तथा सामाजिक प्रगति में सुधार लाना था।''[10]

2.3 भारतीय संविधान में जनजातियों की स्थिति

''मूल निवासियों के आधारों संबंधी विकास शील अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों के प्रति भारत के प्रतिरोध के बावजूद भारतीय संविधान और कानून में आदिवासियों के लिए कुछ सुरक्षात्मक व्यवस्थाएँ की गई है।''[11]

संविधान में अनुच्छेद 366 (25) के अनुसार अनुसूचित जनजाति का तात्पर्य वे जनजातियाँ अथवा जनजातीय समुदाय के समूह या अंशों से है जो कि संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत अनूसूचित जनजातियों के रूप में माने गये हैं। अनूच्छेद 342 तहत राष्ट्रपति के द्वारा आम सूचना जारी कर अनुसूचित जनजाति को सूची में वर्णित किया जा सकता है। संसद किसी भी राज्य अथवा संघ शासित क्षेत्रों के किसी भी जनजातीय समुदाय अथवा उसके अंश को कानून अनुसूचित की सूचि से हटा सकती है अथवा उसमें जोड़ भी सकती है।

अनुच्छेद 339 (1) के अनुसार राष्ट्रपति किसी भी समय तथा संविधान के आरंभ होने से 10 वर्षों की अवधि की समाप्ति पर राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण पर रिपोर्ट लाने हेतु एक आयोग नियुक्त कर सकते हैं। इस प्रकार का एक मात्र आयोग–अनुसूचित क्षेत्र एवं अनुसूचित जनजाति 28 अप्रैल 1960 को गठित किया गया था। इसने अपनी रिपोर्ट अक्टूबर 1961 में पेश की थी। इसके बाद अभी तक इस तरह का दूसरा आयोग नियुक्त नहीं किया गया।

जनजातियों के आर्थिक विकास संबंधी प्रावधान अनुच्छेद 275 (1) तथा 339 (2) में निहित हैं। जनजातियों के कल्याण हेतु विकास योजनाओं के खर्च की पूर्ति के लिए अनुदान के प्रावधान एवं अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या वाले राज्यों के विशेष केन्द्रीय सहायता दिये जाने का प्रवधान किया गया है। परन्तु वास्तव में ऐसा

---

[10] जनजातीय भारत– नदीम हुसनैन–पृ.262.

[11] भारत के आदिवासी,, रत्नाकर भेंगरा, सी.आर विजाय और शिमसन लुईथुई, अनुवादक– अनिश अहुलवालिया पृ.29.

नहीं किया जाता है। अनुच्छेद 275 (1) में भारत सरकार की निधि का कुछ भाग अनुसूचित जनजातियों के कल्याणार्थ तय किया जाएगा।

अनुच्छेद 338 के अनुसार अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए राष्ट्रपति द्वारा एक विशेष अधिकारी की नियुक्त करने का प्रावधान है। वह अधिकारी सभी सुरक्षा संबंधी मामलों की जाँच करेगा एवं वह रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपेगा।

सुरक्षा संबंधी संविधान के कुछ अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षणिक एवम् आर्थिक हितों के विकास के बारे में प्रावधान करता हैं। और अनुच्छेद 164 बिहार, झारखंड, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, तथा छत्तीसगढ़ आदि बहुसंख्यांक जनजातीय राज्यों में आदिवासी कल्याण के लिए एक प्रभारी मंत्री की नियुक्त का अधिकार प्रदान करता है।

अनुच्छेद 330 के अनुसार अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए लोकसभा सीटों का आरक्षण रहेगा। अनुच्छेद 332 के अनुसार प्रत्येक राज्य की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण रहेगा। अनुच्छेद 334 के अनुसार आरंभ होने के 40 वर्षों की अवधि में आरक्षण समाप्त होगा। अब यह फिर संविधान संशोधन द्वारा 10 वर्षों के लिए और बढ़ा दिया गया है।

अनुच्छेद 335 के अनुसार वैसे कोई सीमा नहीं है, लेकिन केन्द्र व राज्य सरकारों के तहत सेवाओं, पदों में नियुक्तियों के मामलों पर अनुसूचित जातियों व जनजातियों के सदस्यों के दावों पर विचार किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 16 '4' केवल उन पिछड़े वर्गो के नागरिकों के आरक्षण की अनुमति देती है। सरकार के विचार से सरकार सेवाओं में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं है। अनुच्छेद 19 '5' भारत में विचरण एवम् आवास तथा संपत्ति अर्जन व निपटान करने का अधिकार सभी नागरिकों को है परंतु इस अनुच्छेद के तहत जनजातियों के सदस्यों के हितों की सुरक्षा हेतु सरकार विशेष प्रतिबंध लागू कर सकती है।

अनुच्छेद 15, 16 '4', 46 व 340 के अनुसार सरकार को शासकीय शैक्षणिक संस्थानों में पिछड़े वर्गों के नागरिकों को सीटों के आरक्षण के लिए संवैधानिक अधिकार दिया।

अनुच्छेद 29 के अनुसार सांस्कृतिक अथवा भाषाई अल्पसंख्यकों के अपनी भाषा अथवा संस्कृति को पूरा करने के बजाय केवल कुछ संवैधानिक औपचारिकताओं को पूरा करके रह जाता है। अधिकतर आदिवासी संसद सदस्य या विधायक राष्ट्रपति या मुख्य धारा के पार्टियों के टिकट पर चुनाव लड़ते हैं। इसलिए उनपर पार्टी से वाकिफ क्षेत्रीय पार्टियों के एम.पी. या एम.एल.ए. या अधिक स्वतंत्र राजनीतिक नेताओं की संख्या बहुत कम होती है जिससे उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अनुच्छेद 15 '4' में शैक्षणिक संस्थाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटें आरक्षण रखने का प्रावधान है, लेकिन इस आरक्षण के प्रति उच्चजातीय 'उच्चवर्गीय' लोगों में बहुत नाराजगी हैं।

''संविधान की 5वीं और 6वीं अनुसूचियाँ 'यथा लिखित' इतनी विस्तृत है कि ये अनुसूचियाँ एक तरह से संविधान के भीतर एक संविधान हैं। इसकी मूल भावना यही है कि जनजातीय क्षेत्रों के लिए किसी औपचारिक प्रणाली को अपनाने पर भी आदिवासियों की अपनी परंपरा को ही आधार भूत माना जाना चाहिए ताकि आदिवासी लोगों को अपनी खुद की समझ के मुताबिक आगे बढ़ने का मौका मिल सके और उनके समाज पर कोई बाहरी व्यस्था न थोपी जाए।''[12]

इससे स्पष्ट होता है कि आदिवासियों के ऊपर किसी व्यवस्था का बोझ नहीं है उनको अपने मर्जी से आगे बढ़ने का अधिकार मिलने की सोच संविधान की रही है।

2.4 जनजातीय समाज एवं जीवन

2.4.1. जनजातीय समाज

18वीं और 19वीं शताब्दी में यूरोप के अनेक राज्यों ने संसार के अन्य भूखंडों जैसे अफ्रीका एशिया, दक्षिण अमेरिका आस्ट्रेलिया आदि देशों पर अपना साम्राज्य किया और उनको अपना उपनिवेश बनाया। उन सभी देशों के अपने धर्म थे, उपनी संस्कृति थी, अपनी सभ्यता थी, जो यूरोपीय विजेताओं ने इन धर्मों एवं संस्कृतियों

[12] भारत के आदिवासी, रत्नाकार भेंगरा, सी.आर विजाय और शिमरान लुईभुई अनुवादक अनिश अहुलवालिया पृ.37

को हीन समझा, इसलिए इन देशों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए पादरी भेजे गये जिससे वे उन्हें उनके समकक्ष सभ्य बना सके। इन सभी देशों में यूरोपीय लोगों ने यहाँ के मूल निवासियों के संस्कृति, सामाजिक रीतियाँ, आर्थिक व्यवस्था, भाषा आदि में अपने समाज तथा संस्कृति से पूर्णतः भिन्न पाया वे प्रजातीय तत्वों में भी इन स्थानों के मूल निवासियों से भिन्न थे। इस प्रकार उन समुदायों को जो कि यूरोपीय सभ्यता के अंतर्गत नहीं आते थे, वे आदिम समाज माना गया। आदिम समाजों से तात्पर्थ उन समाजों से था जो मानव समाज के उद्भव के समाज थे। आदिम समाज को प्राचीनतम समाज भी माना गया है।

मानव विज्ञान की उत्पत्ति इन्हीं समाजों के अध्ययन के साथ–साथ हुई। मानव समाज की उत्पत्ति और संरचना के उत्पत्ति का प्रश्न उनके सामने था। आदिम समाज मानवीय समाज के सजीव उदाहरण बन गये।

भारत का आदिवासी समाज अनेक जनजातियों में विभाजित हैं। भारत एवं संसार के अन्य आदिवासी क्षेत्रों में निवास करनेवाली जनजातियों के सामाजिक संघठन में बहुत समानता दिखाई देती हैं। 'परिवार' सामाजिक संघठन की इकाई हैं। परिवार संबंधित वर्ग का एक सदस्य होता है वही किसी विशिष्ट गोत्र का भी हो सकता है। तथा उसका विशालतर रूप 'ग्रामीण समुदाय' का भी वह सदस्य है। जनजातीय समाज की संरचना में स्तरीकरण नहीं पाया जाता है। सामाजिक, व्यक्तिगत, समानता केवल आयु तथा लिंग भेद पर ही आधारित होती है। उनका परस्पर एक दूसरे के साथ लेन–देन होता रहता है, वे आपस में एकता की भावना को जागृत करते हैं। जनजातीय समाज में सभी सदस्यों को उत्पादन के साधनों को समान रूप से शोषण करने का पूर्ण अधिकार होता हैं। उनमें न तो कोई मालिक होता है न ही कोई श्रमिक सामुदायिक आर्थिक व्यवस्था समाज में पाई जाती है। समाज के सब सदस्य समान होते हैं और वर्ग विभिन्नता समाज में नहीं है।

2.4.2. जनजातीय जीवन

2.4.2.1. निवास

''उत्तर में हिमालय की ऊँची चोटियाँ बीच में सतपुड़ा और विंध्याचल के हरे–भरे पर्वत। दक्षिण में नीलगिरि और पश्चिमी घाट के सीधे खड़े पहाड़। पश्चिम

में अरावली की पहाड़ियाँ। पूरब के सघन और भारी वर्षावाले ऊँचे शिखर। ये सब हमारे देश की शोभा हैं। इनके निवासी नागरी सभ्यता से बहुत दूर हैं। उनकी अपनी संस्कृति है, सभ्यता है, सुन्दरता के वे प्रेमी हैं। उनकी छोटी सी झोपड़ी होती है। कहने को वह बहुत छोटी है। पर उसका राज्य बड़ा है। बहुत बड़ा''[13] आदिवासी अपने नगर के राजा हैं, वे पहाड़ों, नदियों, जंगलों में बसते है। दिनभर वे पहाड़ों जंगलों में घूमकर अपनी रोजी–रोटी कमाते है।

2.4.2.2. परिवार

मनुष्य पहले अकेले रहता था जैसे–जैसे विकास होता चला गया वैसे–वैसे एक परिवार की प्रथा आरम्भ हुई। प्रत्येक समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था रही है। प्रत्येक परिवार में एक मुखिया होता है। परिवार का सारा काम उससे पूछकर किया जाता है। वह चाहे स्त्री हो या पुरूष। 'गारो' और 'नायर' जनजातियों में स्त्री मुखिया होती है। परिवार में जो सबसे वयस्क होते है वही सयाना माना जाता है। उससे सारे सदस्य बॅधे होते है।

2.4.2.2.1 केन्द्रीय परिवार

परिवार में सामान्यतः अधिक से अधिक सदस्य सात से आठ होते हैं। नागरीकरण प्रकिया से संयुक्त परिवार के विघटन का परिणाम ही केंद्रीय परिवार का जन्म है। 'हो' जैसी जनजाति इसका उत्तम उदाहरण है। 'हो' जनजाति में परिवार के सदस्य एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

अ. संयुक्त परिवारः–

''संयुक्त परिवार से तात्पर्य उन परिवारों से हैं जिनमें कई पीढ़ियों के सदस्य परंपरा संबद्ध होते है।''[14] डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती ने भारतीय जनजातीय परिवार को दो भागों में बाँटा है– 1. मातृ–वंशिक परिवार 2. पितृ वंशिक परिवार। मातृवंशिक परिवार में परिवार के बच्चे अपनी माता के कुल अथवा वंश के नाम से जाने जाते

---

[13] हमारे आदिवासी– रारेंद्र वस्थाी तृषित – पृ.–01
[14] जनजातीय समाजशास्त्र– श्रीनाथ शर्मा–पृ.43.

हैं। इस व्यवस्था के अंतर्गत परिवार में सर्वोच्च स्थान स्त्री को प्राप्त होता है। ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर निवास करनेवाले 'खासी' तथा 'गारो' जनजातियाँ, केरल के 'नायर', दक्षिण भारत की 'कादर', इरूला', तथा 'पुलायन' आदि जनजातियाँ आदि इसका उत्तम उदाहरण हैं। पितृ सत्तात्मक परिवार में पुरूष प्रधान होता है। बच्चे पिता के कुल अथवा वंश का नाम धारण करते हैं। भारत की कई जनजातियों में पैत्रक परिवारों के उदाहरण मिलते हैं। जैसे– 'खड़ियां', 'भील', 'अंगामी' 'ऊराँव' आदि।

3. संस्कार

''जन्म, विवाह एवं मरण, जीवनपथ की मुख्य स्थितियॉ हैं जिनके आस–पास मानव–समूह विश्वासों, रीति–रिवाजों और व्यवहार प्रकारों का एक ऐसा जटिल ताना–बाना बुना लेता है कि उनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना उस संस्कृति का पूर्ण चित्र प्राप्त नहीं किया जा सकता''[15] उपर्युक्त संस्कार जनजातीय संस्कृति में पाये जाते है। जिसमें ज्यादा विवाह संस्कारा को महत्व दिया जाता है।

अ. जन्म

ऐसी कोई भी जनजातीय संस्कृति नहीं जिसे संतानोत्पत्ति का रहस्य ज्ञात न हो, जनजातियों में स्त्री गर्भाधान के समय पाँचवे माह से ही संतति के संबंध में चिंता तथा परंपरागत निषेधों का पालन करती हैं। ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे। कमार जनजातियों की स्त्रियाँ श्मशान के समीप नहीं जाती। घोड़े की छाया से बचने का नियम हैं। माता–पिता को सूर्य और चंद्र–ग्रहण नहीं देखना चाहिए। उड़ीसा की 'बोंदो' जनजाति में गर्भवती स्त्री ग्रहण के समय बाहर नहीं निकलती। 'रेगमा', नागा जनजाति में बालक नामकरण के समय लगातार रोता रहता है तो यह अनुमान किया जाता है कि नाम उसके उपयुक्त नहीं है, तब नाम शीघ्र ही बदल दिया जाता है।

---

[15] मनव और संस्कृति –श्यामचरण दुबे–पृ.246.

ब. विवाह

भारतीय जनजातियों के साथी अर्जित करने की नौ महत्तपूर्ण विधियाँ लोकप्रिय पायी गयी हैं–

a. बंदीकरण द्वारा विवाह

जब कोई पुरूष एक स्त्री को बलपूर्वक उसके गाँव से छीन कर ले जाता है अंततः बलपूर्वक विवाह कर लेता है। उसे ही बंदीकरण विवाह कहते है। यह विवाह बहुत से जनजातियों समाज इस प्रकार के विवाह को स्वीकृति देते है यह विवाह 'नागा' जनजातियों में लोकप्रिय रहा था।

b. विनिमय द्वारा विवाह

यह विवाह दुल्हन के ऊँचे मूल्य से बचने के साधन के रूप में हुआ। इस प्रकार के विवाह में दो परिवार महिलाओं का विनियम एक दूसरे से करते है। जिसमें एक पुरूष अपनी बहन, अथवा, अपने घर के किसी अन्य स्त्री को अपनी पत्नी के बदले में देता है। यह विवाह पद्धति कम या अधिक पूरे भारत में पायी जाती है। दिलचस्प बात है कि 'मेघालय' की जनजातियों में इस की अनुमति नहीं थी।

c. क्रय द्वारा विवाह

क्रय विवाह की पद्धति संपूर्ण जनजातीय भारत में वैवाहिक संबंधों के एक लोकप्रिय तरीके के रूप में अत्यधिक प्रचलित है। इस प्रकार के विवाह में वधू (दुल्हन) का मूल्य नकद अथवा किसी वस्तु के रूप में भुगताकर वधू से शादी करते हैं। यह पद्धति 'मुंडा', 'ऊराँव', 'हो', 'संथाली', 'रेगमा', 'नागा', जनजातियों में प्रचलित है।

d. सह पलायन द्वारा विवाह

ये विवाह जनजातियों में बहुत कम होता है। जब लड़कों 'दुल्हा' तथा लड़कियों 'दुल्हन' अपने पारपंरिक विनम्रता को त्यागकर और माता–पिता की सहमती से न होकर दुल्हा और दुल्हन दोनों भाग कर विवाह करना ही सह पलायन विवाह कहते है। कभी–कभी बुजुर्ग लोग प्रेमी जोड़े को वापस भी लेते थे। आज भी यह विवाह बहुत प्रचलित है इस को प्रेम विवाह (Love Marriage) कहते है। यह विवाह छोटे नागपुर की जनजातियों में दिखाई देती है।

e. सेवा द्वारा विवाह

सेवा विवाह में वधू का मूल्य भुगताने में असमर्थ है तो एक दूसरा तरीका है जिसमें भावी दुल्हा, दुल्हन के घर पर सेवा करके इसे पूरा करता है तथा कुछ वर्षों के बाद अपनी मनचाही लड़की से विवाह करता है। यह विवाह 'मणिपुर' की जनजातियों में प्रचलित है।

f. बल प्रयोग द्वारा विवाह

यह एक ऐसी लड़की का मामला होता है जो किसी अनिच्छुक युवक से विवाह करने की अभिलाषा रखती है। इस प्रकार के मामले में इच्छुक लड़की अनिच्छुक दुल्हा तथा उसके माता–पिता पर अपने को थोप देती है। वह अपने भावी पति तथा उसके माता–पिता की सेवा करती है उसमें अपमानित संघर्ष एवं कष्ट भी दिया जाता है; यदि वह दुल्हन अपने इरादों से जुड़ी हो तो बहू के रूप में स्वीकार करलेते है यदि नही ंतो अलग होती है। यह विवाह छोटा नागपुर के 'बिरहारे' तथा 'हो' और कुछ जनजातियों मे प्रचलित है।

g. परीक्षा द्वारा विवाह

यह विवाह में जनजातियों के युवा को पहले अपना व्यक्तिगत साहस या प्रतिभा को सिद्ध करनी पड़ती है फिर बाद में मनचाही लड़की का हाथ माँगने का अधिकार रह सकता है। यह पद्धति 'भील' लोगों में सब से अधिक प्रचलित है।

h. परिवीक्षा द्वारा विवाह

इस पद्धति के अंतर्गत भावी पति तथा पत्नी को दुल्हन के घर में कुछ समय के लिए साथ रहने की अनुमति दी जाती है यदि वे एक दूसरे को पसंद करते हैं। यदि दोनों एक दूसरे का स्वभाव एक दूसरे की मुताबिक नहीं पाते हैं तो अलग हो जाते हैं। इसको 'आधुनिक कोर्टशिप की पद्धति कहा जाता है इसका प्रचलन अरूणाचल प्रदेश के 'कुकी' लोगों में पाया जाता है। इस विवाह को 'राजी खुशी' कहते है।

i. परस्पर स्वीकृति द्वारा विवाह

परस्पर स्वीकृति द्वारा विवाह जनजातियों का हिन्दुओं से संपर्क का परिणाम है। यह पद्धति हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी में प्रचलित पद्धति के समान है जिसमें विवाह की समस्त औपचारिकताएँ संबंधित पक्षों द्वारा परस्पर परामर्श तथा सहमति से पूर्ण की जाती हैं।

उपर्युक्त विवाह की प्रथा आदिवासी या जनजातियों में पायी जाती है। इन जनजातियों का विश्वास है कि उनकी अपनी संस्कृति एवं परंपरा के अनुसार विवाह करना श्रेष्ठ है। बिहार की 'संथाल' जनजाति में दूसरे जनजातियों से विवाह करना अपराध माना जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि जनजातियों में अपनी–अपनी संस्कृति एवं प्रथा को उच्च समझा जाता है।

क. मृत्यु

आदिवासियों के अनुसार व्यक्ति का जीवन मृत्यु से समाप्त नहीं हो जाता है। अधिकांशतः शव को अंतिम संस्कार के लिए तैयार करके या तो उसका

दाह–संस्कार कर दिया जाता है या उसे जमीन में गाड़ दिया जाता है। अनेक समूहों में शव–संस्कार के बाद मृत व्यक्ति की दैनिक उपयोग की वस्तुएँ उसकी कब्र के पास छोड़ दी जाती हैं। आदिलाबाद जिले के 'गोंड' जनजातियों में दाह संस्कार के समय गौ–बलि की प्रथा आज भी है। मृत्यु के कुछ दिन बाद शुद्धि–भोज होता है। ऐसी प्रथाएँ जनजातियों मे अधिकांश मिलती है।

4. अर्थ व्यवस्था

आदिवासी लोग आज के विज्ञान में भी अधिकांशतः प्रकृति पर आश्रित हैं। प्रत्येक जनजाति अपने निवास के परिवेश पर आधारित अर्थव्यवस्था को निर्धारित करती है। सिक्कम की 'लेपचा' जनजाति में कुछ समय कृषि एवं शेष वर्ष पशु पालन एवं वनोपज किया जाता हैं। उत्तर पूर्वी क्षेत्र की 'गारो', 'खासी', 'डाफला', आदि जनजातियों की अर्थ व्यवस्था जंगलों पर निर्भर हैं। मध्य भारत का समूह स्वतंत्रता के पूर्व तक वनोपज पे आधारित थे। बाद में कोयलों के उत्खनन के कार्य में कार्य करते रहें। छत्तीसगढ़, झारखण्ड, तथा बिहार, उड़ीसा एवं असम के आदिवासी समूह कृषि को अपना प्रमुख आर्थिक आधार बना चुके हैं। महाराष्ट्र के समुद्री तट पर पाई जानेवाली 'कोली' जनजाति का व्यवसाय मछली मारना है। दक्षिण भारत की 'कोट', 'कादर', इरूला आदि जनजातियाँ मत्स्य पालन एवं नारियल की खेती पर निर्भर हैं। 'जरवा', निकोवारी की जातियाँ कृषि और उद्योग को आधार बनाये हुए हैं।

इस प्रकार संपूर्ण विवरण से भारतीय जनजातियों की अर्थ व्यवस्था का पता चलता हैं।

5. समाज संगठन

आदिवासी हमेशा एक दूसरे से बँधे रहते हैं। प्रत्येक आदिवासी परिवार में एक मुखिया होता है। परिवार का सारा काम उससे पूछकर किया जाता है। इसी तरह गाँव में भी एक मुखिया होता है। गाँव के हर आदमी को वहाँ हाजिर करना पड़ता है। मणिपुर के 'पुरूम', 'कूकी' लोगो में ग्राम परिषदें होती हैं। अपने ऊपर आये संकटों का सामना सारा गाँव मिलकर करता है। सालभर में बहुत से समारोह गाँव

में होते हैं। सारे बैर–भाव भूलकर गाँव के लोग इसमें भाग लेते है और गाँव भर लोग मिलकर खाते हैं।

इसी तरह कुछ जनजातियों में क्वांरे स्त्री–पुरूष साथ रहते हैं। वे रात में एक साथ विश्राम करते हैं। डॉ. एन.आर.एन. श्रीवास्तव का कहना है कि ''कुमार गृह जनजातीय समाज में सहकारिता का प्रतीक है जो पास्परिक स्नेह एवं प्रेम तथा सद्भावना को प्रोत्साहित करता है।''[16] जनजातियों में ऐसे कई नियम एवं व्यवहार है जो उन्हें संगठित करने में मदद करते है।

6. धर्म

डॉ. राजेंद्र अवस्थी 'तृषित' का कहना है कि अधिकांश आदिवासी हिन्दू हैं। इसलिए वे हिन्दू धर्म मानते हैं अनेक ईसाई मिशनरियों ने आदिवासियों के धर्म बदले हैं। आदिवासियों में देवी–देवताओं की कमी नहीं है। हर दिन किसी–न–किसी देवताओं का होता हैं। देवी–देवता ही भूत–प्रेतों की बाधा से रक्षा करते हैं। ऐसा उनका मानना हैं। प्रत्येक जनजाति में भिन्न–भिन्न पर्व त्यौहार मनाये जाते हैं। उदाहरण के लिए 'संथाल' दीपावली के समय सोहराथ पर्व मनाते हैं तथा 'गौंड' मड़ई नामक पर्व। इसके साथ ही वे धार्मिक विश्वास भी रखते दिखाई देते हैं।

7. जनजातियों की समस्याएँ

जनजातियों के जीवन का स्तर, जीवन–यापन, सांस्कृतिक और सामाजिक अस्मिताओं, सुविधाओं के अभाव संसाधनों की कमी, स्वास्थ्य संबंधी विकार आदि ऐसे अनेक पक्ष है जो जनजातीय समस्याओं को जन्म देते हैं–

1. दरिद्रता/निर्धनता

जनजातियाँ अपनी कमजोरी के कारण आर्थिक कमजोरी का शिकार हुई और दरिद्र होती चली गई। बाह्य समूह जनजातियों की अज्ञानता का लाभ उठाकर उनका दोहन करते हैं। परंपरागत कृषि के कारण निर्धनता बढ़ती जा रही है।

[16] जनजातीय भारत– डॉ.ए.आर.एन श्रीवास्तव पृ.134.

वनोपज से जनजातियों के अधिकार सरकार ने छीन लिए इसके कारण दरिद्रता बढ़ी। अज्ञानता के कारण धूम्रपान एवं शराब से उत्पन्न रोगों से दरिद्रता आती हैं इसी दरिद्रता के परिणामस्वरूप इस समाजों में वेश्यावृत्ति, कुपोषण आदि से विकास–मार्ग में बाधा उत्पन्न हुई है।

2. ऋणग्रस्तता

जनजातीय समूह आपात स्थिति में साहूकार महाजन से ऋण लेते हैं, जिसका सूद इतना होता है कि कई पीढ़ियाँ उसी को चुकाने में खत्म हो जाएँगी। ऋणग्रस्तता के कारण शासन द्वारा वनों से अधिकार छिनने पर, परंपरागत साधनों से कृषि करने के कारण, सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह हेतु या विवाह, उत्सव के समय वे ऋण लेते हैं और बाद में उसको चुकाने में बहुत समय लगता है।

3. भूमि–पृथक्करणः–

आज भारत के अनेक जनजातीय समूह भूमि पृथक्करण की समस्याओं से ग्रस्त हैं। भूमि पृथक्करण के दो कारण हैं एक तो प्राकृतिक संकट जैसे बाढ, भूकंप। दूसरा है शासन द्वारा भूमि अधिग्रहण जैसे, कोयला खदान, खनिज खदान, तेल भंडार, बाँध आदि कारणों से शासन द्वारा उन्हें विस्थापित कियका जाता है।

जनजातियों के उपर्युक्त समस्याएँ ही नहीं और बहुतसारी समस्याएँ जैसे– अस्थायी खेती, वन तथा जनजातियाँ, स्वास्थ्य, मादिरापन, आवास, शिक्षा, संचार 'communication' औद्योगीकरण व नगरीकरण 'Industrialisation and Urbamization' जनह्रास 'Depopuletion' आदि उनकी जीवन स्थिति को दुष्कर बनाये हुए है।

2.5. भारत की प्रमुख जनजातियाँ

भारत में कई जनजातियाँ हैं पर यहाँ प्रयास रहा है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों की महत्त्वपूर्ण जनजातियों का अध्ययन किया जाये।

2.5.1. भोटिया जनजाति

मध्य हिमालय के उत्तराखंड क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण जनजाति है। वे अपने को 'शौका' कहलाना पसंद करते हैं। भोटिया जनजाति में घोटुल 'युवग्रह' का चलन भी मिलता है। इनकी अनेक प्रथाओं एवं रीति–रिवाजों पर हिन्दु धर्म की प्रभाव की स्पष्ट झलक भी मिलती है। भोटिया जनजाति व्यापार–प्रधान है। कृषि का आर्थिक जीवन गौण स्थान है।

2.5.2. जौनसारी जनजाति

देहरादून जिले के जौनसार भावर प्रदेश के बीहड़ तथा पर्वतीय भागों में यह जनजाति निवास करती है। इसको 'खास' जनजाति से भी जाना जाता है। यह जनजाति पर्याप्त रूप से हिन्दूकृत हो गयी है। जौनसारी जनजाति बहुपति प्रथा 'polyanday' के बारे में विशिष्ट रूप से जानी जाती है। इनकी संपूर्ण अर्थ व्यवस्था कृषि पर आधारित है। शिक्षा का प्रसार थोड़ा बहुत इस जनजाति में हुआ है।

2.5.3.. थारू जनजाति

थारू' जनजाति उत्तर प्रदेश की 5 प्रमुख जनजातियों में से एक है। ये लोग तरायी क्षेत्र के ग्रामीण प्रदेशों तथा नेपाल के 'तराई' क्षेत्र में निवास करते हैं। इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है तथा ये कृषक–श्रमिक के रूप में भी कार्य करते देखते हैं। इनमें बाल विवाह की प्रथा है।

2.5.4. बोकसा जनजाति

बोकसा जनजाति उत्तर प्रदेश के 'तराई' देश में वास करती है। ये अपने को राजपूतों का वंशज मानते हैं। बोकसा जनजाति गोत्रों मे ंविभाजित है। इनमें दहेज तथा बहु पत्नी प्रथा प्रचलित है। कृषि इनका प्रमुख व्यवसाय है।

2.5.5. किन्नौर जनजाति

किन्नौर हिमाचल की एक महत्वपूर्ण जनजाति है। ये लोग बहु पतित्व विवाह प्रणाली अपनाते हैं। तथा जनजाति हिन्दू–देवी–देवताओं में विश्वास करती है।

इनका प्रमुख व्यवसाय 'भेड़' पालन है। ये लोग अत्यधिक गरीब हैं। संगीत, नृत्य इनके सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं।

2.5.6. गारो जनजाति

'गारों देश के पूर्वोत्तर राज्य मेघालय की जनजाति है। इनकी विशिष्टता यह है कि ये मातृसत्तात्मक एवं मातृवंश हैं। स्त्रियों को पुरूषों से ज्यादा अधिकार इस जनजाति में हैं।

2.5.7. खासी जनजाति

'खासी' जनजाति के लोग पहाड़ियों में निवास करते हैं। ये उत्तर में कायरूप तथा नौ गाँव जिला तथा दक्षिण में बांग्लादेश, पश्चिम में गारो पाहाड़ियों में स्थित है। खासी परविार का केन्द्रबिन्दु 'माँ' होती है।

2.5.8. नागा जनजाति

'नागा' भारत की एक प्रमुख जनजाति है जो अनेक पंथो में विभाजित है। प्रत्येक पंथ की अपनी भाषा तथा स्वतंत्र पहचान है। नागालैंड का सारा प्रदेश इनका निवास स्थल हैं। ये स्थायी रूप से गाँवों में ही रहती हैं नागाओं के युवाग्रहों को 'मोरंग' नाम से जाना जाता है। नृत्य के प्रति विशेष अभिरूचि इनमें है।

2.5.9. डब्ला जनजाति

डब्ला जनजाति गुजरात प्रदेश की एक महत्वपूर्ण जनजाति है। इनमें अधिकांश लोग कृषक एवं श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। इनकी गरीबी तथा ऋण–ग्रस्तता के निवारण में गांधी जी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2.5.10. संथाल जनजाति

संथाल बिहार की एक प्रमुख जनजाति है। संथाल दूसरे सबसे बड़े जनजातीय समूह के रूप में हैं। इन लोगों की धनुष–बाण रखने की प्रथा है। इनके पंचायत को

दरबार के नाम से जाना जाता है। जो न्याय करने का काम करता है। हिंदू रीति–रिवाजों को अनुकरण इनमें बढ़ा है।

2.5.11. गौंड जनजाति

यह भारत की सर्वाधिक प्रमुख जनजातियों में एक है। भौगोलिक दृष्टि से यह पर्याप्त व्यापक क्षेत्र–दक्षिण में गोदावरी नदी तथा उत्तर में विंध्याचल तक फैली हुई हैं जबकि दक्षिण में तेलुगु बोली जाती है। भारत की यह सर्वाधिक जनसंख्यावाली जनजाति है। नृत्य के प्रति काफी अभिरूचि गौंड जनजातियों में दिखाई देती हे।

2.5.12 'हो' जनजाति

बिहार तथा उड़ीस राज्य में 'हो' जनजाति पाई जाती है। इस जनजाति के लोग कद में छोटे तथा श्याम वर्ण के होते है। हिन्दू रीति–रिवाजों से पर्याप्त साम्य हैं। 'सिंग–बोंगा' इनका सर्वोच्च इष्ट देवता है।

2.5.13. खोंड जनजाति

खोंड जनजाति उड़ीसा राज्य का सबसे बड़ा जनजातीय समूह है। ये उड़ीस के फूलबनी जिले के अधिकांश भाग में निवास करती हैं। खोंड सोगों पर उड़ीसा भाषा एवं संस्कृति का भाव दिखाई देता है। इनमें युवगृह की प्रथा का भी महत्व है। इनमें गोत्र संगठन ज्यादा मात्रा में है। खोंड परिवार पितृवंशिक तथा पितृस्थानिक हैं। इनमें अंधविश्वास ज्यादा पाया जाता है।

2.5.14. टोडा जनजाति

नीलगिरी पहाडियों में इनका निवास पाया जाता है। ये अपनी विशिष्ट प्रथाओं के लिए प्रसिद्ध है तथा पशुपालन इनके जीवन–यापन का प्रमुख साधन हैं। टोडा लोग शाकाहारी हैं।

2.5.15. उराली जनजाति

उराली जनजाति दक्षिण भारत के केरल राज्य में पायी जाती है। ये केरल के इदुकी जिले के थोदीपुझा तालुका में सर्वाधिक संख्या में पाये जाते हैं। यह जनजाति आज भी परंपराओं के निकट प्रतीत होते हैं। सरकार ने इन लोगों को मुख्य धारा में लाने के अनेक प्रयास किये हैं। इन समाजों में स्त्रियों की स्थिति पर्याप्त अच्छी है। उराली परिवार में मातृसत्तात्मक मिला जुला स्वरूप दिखता है। तथा इस जनजाति के लोग शिक्षा से विमुख है। इनकी अपनी परंपरागत विधि पर ही आस्था बनी हुई है।

2.6 अपराधी जनजातियों की छवि : कानूनी एवम् राजनीतिक आयामः

भारत में कुछ समय पहले कुछ जनजातियों ने अपने व्यवसाय के रूप में अपराध को अपनाया था। सरकार उनके संगठन एवं नियंत्रण पाने में ठीक से सफल नहीं हो पा रही थी। उनकी इसी अपराधी प्रवृत्ति के कारण उन्हें 'अपराधी जाति' 'Criminal Tribe' नाम दिया था।

2.6.1. अपराधी जाति

अंग्रेज सरकार ने 1871 में जनजातियों को अपराधी जाति करार देकर 'अपराधी जनजाति कानून बनाया गया। तब से इन जनजातियों की ओर देखने की दृष्टि बदल गयी है। श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव चेयरमेन पब्लिक सर्विस कमीशन तथा अध्यक्ष डिसचार्ज प्रिजनर्स एंड सोसायटी ने स्वर्गीय श्री प्रकाशनारायण सक्सेना की संयुक्त प्रांत में 'अपराधी जातियाँ' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा था कि 'भारतवर्ष में अपराधशील जातियों का पाया जाना एक विचित्र समस्या है। इस प्रकार की जनजातियाँ विश्व के किसी भाग में नहीं पायी जाती है।'

''प्रत्येक समाज में सदस्यों के हितों व सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए कुछ नियम बनाये जाते हैं। समाज द्वारा निर्मित इन नियमों का पालन करना सभी के लिए आवश्यक होता है; परंतु प्रत्येक समाज में अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समाज द्वारा स्वीकृत नियमों को त्यागकर अलग पंक्ति में खड़े हो जाते हैं। यही अपराध

है।''[17] डॉ. शिवतोष दास के अनुसार ''अपराधी उन व्यक्तियों को कहते हैं जो समाज में निभ कर नहीं चलते और जो कुछ जान्मिक एवं वातावरण के कुचक्रों से बाधित हो कर अपराध करने लगते है। लेकिन अपराधशील जातियों के व्यक्ति पारस्परिक रूप से निभकर चलते है उसकी अपनी निज की मान–मर्यादा होती है। उनकी अपनी जातीय पंचायत होती है जिसके नियम प्रत्येक के लिए शिरोधार्य होते है।''[18]

सरकार ने 1924 में इनके अपराधों के रोकथाम के लिए एक अधिनियम बनाया था। जिसके अनुसार इन संगठित अपराधियों को अपराधी जाति नाम दिया गया। 31 अगस्त 1952 से संविधान के अनुसार उनको अब अपराधी जाति नही कहा जाता। 1952 में करीब–करीब 2268. 348 लोग अपराधी जाति के रूप में रजिस्टर्ड थे। इन सभी लोगों पर जो प्रतिबंध थे सब हटा लिए गये हैं।

2.6.2. अपराधी बनने के कारण

2.6.2.1 शरीर और रक्त

अपराधी जनजातियों का जन्म कब और कैसे हुआ यह निश्चित नहीं है। एक समय माना गया था कि अपराधी जाति के लोग जन्म से ही अपराधी होते हैं। लेकिन डॉ. डी.एन. मजूमदार ने अपनी खोजों के आधार पर बताया है कि यह कथन ठीक नहीं है। ''नर–विज्ञान और रक्त विज्ञान द्वारा जो भी आँकड़े प्राप्त हुए है, उनसे केवल यह पता चलता है कि वे विशुद्ध जातियाँ नहीं हैं। इनके अतिरिक्त उनकी शारीरिक बनावट और उनमें भी रक्त का कोई दोष नहीं है, क्योंकि उनकी शारीरिक बनावट और रक्त में अन्य जातियों की अपेक्ष कोई विशेष अंतर नहीं है।''[19]

2.6.2.2 निर्धनता

---

[17] अपराध एवं समाज डॉ. धर्मवीर महाजन, डॉ. कमलेश महाजन –पृ.
[18] भारत की जनजातियाँ– डॉ. शिवतोष दास –पृ.172.

[19] भारत की जनजातियाँ– डॉ. शिवतोष –पृ.173–174.

अपराधी जातियों के अपराधी बनने का मुख्य कारण उनकी निर्धनता है। इन लोगों को खाने के लिए अन्न, पहनने के लिए वस्त्र और रहने के लिए घर भी नहीं मिल पाता है। जीविका के मूल साधन उनके पास नहीं है। वे अन्न, वस्त्र और घर। उनके पास अब एक मात्र उपाय बचता है अपराध। क्योंकि वे इससे अपनी जिंदगी की रक्षा कर पाते है।

2.6.2.3. बेकारी

बेकारी जीवन का बहुत बड़ा अभिशाप है। इन जातियों के लोगों के पास जीवन जीने का कोई साधन नहीं है। इनके पास अपनी जमीन तक भी नहीं है। वे मजदूरी करके जानवर पालकर जड़ी–बूटी बेचकर दो वक्त की रोटी जुटा नहीं पाते इसलिए वे व्यभिचार और अपराधों को अपनाते हैं।

2.6.2.4. समाजिक

भारत में जाति व्यवस्था को बहुत महत्त्व दिया जाता हैं। ऊँच–नीच का भेदभाव भी माना जाता है। जनजातियों की ऊँची जातियों पर आश्रित रहना पड़ता है। उनके पारंपरिक कार्यों से उन्नति के मार्ग बंद हुए हैं। डॉ. शिव प्रसाद दास ने अपनी किताब भारत की जनजातियाँ में कहा है कि–''भारतवर्ष में अपराधी जातियों का पाया जाना इस बात की पुष्टि करता है कि भारत की इस अमानवीय जाति–व्यवस्था ने ही अपराधी जातियों को ऐसे घृणित कार्य करने के लिए विवश किया है''[20]

2.6.3. अपराधी जनजातीय समाज

अन्य साधारण जनजातीय समाजों की तरह इनकी भी पंचायत होती है जिसके नियमों के कठोर पालन हर एक की जिम्मेदारी होती है। पंचायत सुख–दुःख में भी सहभागी होती है; पंचायत अपनी जाति की सुरक्षा एवं व्यवस्था की जिम्मेदारी उपने ऊपर लिए रहती है। इस तरह उनका जातीय संगठन देखने को मिलता है।

[20] भारत की जनजातियाँ– डॉ. शिवतोष दास –पृ.174–175.

सभ्य कहलाने वाला समाज आज भी उन जनजातियों को पेशेवर अपराधी मानते हैं। बालकृष्ण रेणके के एक रिपोर्ट के अनुसार ''बिहार के वैशाली जिले के राजा पाकुड़ गाँव में कुछ अज्ञात अपराधियों ने एक खानाबदोश जाति (कुकेरी) के दास सदस्यों को मौत के घाट उतार दिया। अपराधियों और उनके समर्थकों ने इन खानाबदोशों को पेशेवर चोर–लुटेरा बताया।''[21]

2.6.4. कानूनी स्तर

अपराधी जनजातियों पर 1952 में प्रतिबंध लगाये गए थे। जैसे उन जातियों के सभी लोगों को 15 वर्ष की आयु के बाद रजिस्टर्ड कराना पड़ता था, लेकिन 1952 के अधिनियम से वे कानून की दृष्टि में समान हैं। उनके सुधार और सहायता की जिम्मेदारी अब राज्य सरकारों पर है। बालकृष्ण रेणके का कहना है कि ''1871 में बनाया गया अपराधी जनजाति नियम 1952 में रद्द तो हो गया, मगर उनके स्थान पर जो आदतन अपराधी कानून' बना और जो आज भी लागू हैं........अंग्रेजी कानून के मुकाबले देशी कानून खानाबदोश जातियों के लिए ज्यादा बड़ा सदमा साबित हुआ हैं।''[22]

2.6.5. राजनीतिक स्तर

शुरूआती दौर में अपराधी जातियों को बसाने के लिए जो भी योजनाएँ आई वह कुछ हद तक ही सफल रही या असफल हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने 'आदतन अपराधी अधिनियम लागू किया, इसके बाद अपराधी जाति अधिनियम को भी समाप्त कर दिया गया।

सरकार ने इन जनजातियों के सुधार के लिए कुछ विशेष योजनाएँ बनाई गयी। उत्तर प्रदेश में इनके प्रत्येक परिवार को 28 एकड़ भूमि तथा प्रत्येक परिवार को 1880 रूपया नगद सहायता भी दी गई। राज्य सरकार इनके स्कूल, स्वास्थ्य, सफाई आदि के संबंध में भी सुधार व्यवस्था करेगी आदि प्रस्ताव हुए। अभी तक

---

[21] जनसत्ता ले, जाबिर हुसैन, दिल्ली मे ंखानाबदोश–15 दिसंबर 2008

[22] जनसत्ता ले, जाबिर हुसैन, दिल्ली मे ंखानाबदोश–15 दिसंबर 2008.

सरकार ने इन पर बड़े प्रतिबंध लगा रखे थे, किन्तु इनका कोई लाभ नहीं हुआ है। स्वंतत्रता के पश्चात् अपराधी के संबंध में दमनात्मक नीति को त्यागा जा रहा है और सुधारात्मक नीति को अपनाया जा रहा है। अगर यही स्थिति बनी रही तो जनजातियों में अवश्य सुधार होगा।

2.7. भारत की अपराधी जनजातियाँ

डॉ. शिवतोष दास के अनुसार ''अपराधी उन व्यक्तियों को कहते है, जो समाज में निभ कर नहीं चल सकते और जो कुछ जान्मिक एवं वातावरण के कुचक्रों से बाधित होकर अपराध करने लगते है।''[23]

वास्तव में इन जनजाति अपराधी होने के कारण निर्धनता, बेकारी, जाति–व्यवस्था आदि है। इसी के चलते वे अपराध करने लगे। रामशण जोशी के अनुसार ''अपराधी जनजातियाँ या मैदानी आदिवासी ऐसा मानवता समूह है जो कि विकसित समाज के घरों पर बसी हुई है। इन्हें अरण्य आदिवासी समाज और कृषक–शरही समाजों के बीच कहीं रखा जा सकात है।''[24] अपराधी जनजातियाँ न तो कभी अरण्य आदिवासी समाज की धारा में शामिल हो सकी, और न ही सभ्य देहाती समाज ने इन्हें अपना माना ये जातियाँ अवांछित ही बनी रही।

भारत में इन अपराधी जनजातियों का खासा दबदबा रहा है। पिंडारी, कंजर, कबूतरा, सांसी ठग, लम्बाडा, नट, कलंदर जैसी जातियाँ अपने कारनामों के लिए मशहूर है। यह जरूरी नहीं है कि ये सभी अपराध से संबंध रखती है। ऐसी जातियों एवंम् जनजातियाँ पूरे भारत में फैली हुई है। और इन्हें अलग–अलग नामों से जाना जाता है। ''मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में 'भील' जनजाति के लोग आज भी लूट–पाट करते है। उधर इसके विपरीत राजस्थान के भील ऐसा नहीं करते तात्पर्य यह है कि इनकी अपनी क्षेत्र गत विशेषताएँ है''[25]

अंग्रजी शासन ने 1971 में ही अपराधी जनजाति लागू किया। उसके बाद 1924 में एक अधिनियम बनाकर इन संघठित अपराधियों को अपराधी नाम दिया और कई

---

[23] भारत की जनजातियॉ–डॉ. शिवतोष दास–172.
[24] 'हसं' पत्रिका राजेंद्र यादव–पृ.28–2007 मार्च.
[25] 'हसं' पत्रिका राजेंद्र यादव–पृ.28–2007 मार्च

प्रतिबंध लगाए। 1952 तक ये 22, 68, 348 लोग अपराधी जाति के रूप में रजिस्टर्ड थे। लेकिन 1952 में यह काला अपराधी जाति नियम रद्द कर प्रतिबंध हटाये गये।

क्रिमिनल ट्राइब्ज 'Criminal Traibe Act 1924' एक्ट के अनुसार 1924 में उत्तर प्रदेश में करीब 47 अपराधी और खानाबदोश जातियाँ थी। 1949 में अपराधी जातियों की संख्या 28 लाख थी। कुछ प्रमुख अपराधी जनजातियाँ–पासी, दुसाध, भर, मल्लाह, नट, बंजारा, हबूडा, कंजर, भातू बखरिया, बेड़िया लोहार, लंबाडा, कबूतरा, भील, साँसी मदारी आदि प्रमुख है।

2.8. कंजर जनजाति

जनजाति कहते ही आपके मन में जाहिर है कि जंगलों, पहाड़ों में घूमन वाली घूमंतू जनजातियाँ याद आती है। 'कंजर' जनजाति भी इसी तरह की एक जाति है। ''कंजर यानी कननन्वरा, काननचर अर्थात् जंगलों में घूमनेवाला। प्राचीन भारत की सबसे प्रमुख खाना–बदोश जाति। उत्पत्ति माना गुरू और माँ नलिन्या। माना गुरू यानी दिल्ली के मुसलमान बादशाह के मल्लू–कल्लू नाम के दो पहलवानों को हराने वाला आदिवासी। 'नेस्फील्ड' के अनुसार कंजरों की सात उपजातियाँ हैं; किन्तु हैं मुख्य चार ही अर्थात् कुछ बन्ध जो झाडू. बनाते हैं। पत्थर काटते, जो पत्थर काटते हैं। जल्लाद, जो मरे हुए जानवरों को उठाने के साथ–साथ फाँसी देती हैं और रच्छबंध, जो जुलाहों का करघा बनाते हैं''[26]

औपनिवेशिक प्रशासन के एक अंग्रेज अफसर 'किंग जेम्स स्टिफन' ने 1871 में पहली बार भारत की इन जातियों को अपराधी और जरायम पेशा घोषित करते हुए कानून बनाया था। इसमें 1886 से लेकर 1924 के बीच अंग्रेज कानूनविदों जेन्किंस, सर अलंकजेंडर कारड्यू सर जेम्स क्रेशरने कई संशोधन करके इसे बहुत कठोर बना दिया था। ''इसलिए कि 1840 में इन जनजातियों पर भीषण अपराध करने का पहली बार शक किया गया। इसीलिए मिराठ से मद्रास तक राहजनी में लगे अनगिनत कंजरों को गिरफ्तार किया गया। 1870 में जिला हमीरपुर के मेजिस्ट्रेट ले इलके खिलाफ सख्त कार्रवाई की सिफारिश की और 1874 तक आते–आते

[26] 'रेत'– भगवानदास मोखाल पृ.–43–44.

उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर, मथुरा तथा आगरा जिलों में कंजरों ने जो उपद्रव और उत्पात मचाया, उससे अंग्रेजो को उनमें विद्रोह की बू आने लगी।''[27]

सन् 1915 के दशक में उत्तर भारत के अन्य राज्य उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, बिहार आदि राज्यों में इन जनजातियों ने अराजकता, चोरी लूट–मार आदी बहुआयामी के रूप में फैलाया। इन जनजातियों के प्रभाव से बहुत तकलीफे उठानी पड़ी। इन्हीं समस्याओं को नाश करने के लिए अंग्रजी सरकार ने नियम बनाया ''क्रिमिलन ट्राइब्स एक्ट 'Criminal tribe Act.' सन् 1924 में बने इस एक्ट के तहत सरकार ने सैंतालीस जरायम–पेशा जातियाँ नोटिफाई की थी। जैसे भाट, डोम, सिंगीवाला, महावत, बावरिया बधक, कुरमाँगता, कंकाली, बहेलिया, करवाला, कनमैलिया, खुरपालता कनपट्टा गोदनहार, वैद आदि''[28] उपर्युक्त एक्ट के अनुसार सामान्य जनसमुदाय की थोड़ी बहुत राहत मिली। कंजर सिर्फ हिन्दु ही नहीं मुसलमान भी होते है। ''मुसलमानों में भी कंजर होते हैं, जबकि साँसी सारे हिन्दु होते हैं। एक बार मैंने गाजूकी में एक कंजर को नमाज पढ़ते हुए देखा था। जबकि जनाब मैं तो यह समझे हुए था कि सारे कंजर हिन्दु होते हैं''[29] वे मुसलमान के तरह अपनाते परन्तु व्यवसाय की दृष्टि से जरायम–पेशा को स्वीकार करते हैं।

कंजर जनजाति का मुख्य पेशा अवैध शराब बनाना और अपने समाज की कुँवारी लड़कियों द्वारा वेश्यावृत्ति करना ही रहा है। इसके साथ ही यथाअवसर चोरी और राहजनी के अपराध भी उनके पेशे में सुमार किए जाते रहे हैं। जैसे मेवों की संस्कृति और रीति–रिवाज हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों मिलते हैं। हालांकि मान्य और प्रचलित धार्मिक परंपराओं और देवी–देवताओं से कंजरों का बहुत वास्ता नहीं रहा। उनके अपने अलग जनजातीय देवी देवताएँ हैं। इनमें सबसे प्रमुख कुलदेवता गुरू, माॅ नालिन्या, मारी, प्रभा और भुइयाँ आदि को माना है।

माना, गुरू और माँ नालिन्य की संतान इस कंजर जनजाति की त्रासद जीवन गाथा उकेरने के लिए लेखक ने गाजूकी नामक कंजरों की बस्ती, विशेषरूप से उसके कमला सदन के एक परिवार को आधार बनाया है। जैसा कि पहले भी

[27] 'रेत'– भगवानदास मोखाल पृ.–48.
[28] 'रेत'– भगवानदास मोखाल प्.–43–49.

[29] वही पृ.–50.

उल्लेख किया गया है कि इस जनजाति की अविवाहित लड़कियाँ वेश्यावृत्ति का पेशा करती हैं और पुरूष प्रायः कोई भी काम–धंधा नहीं करते हैं। इस जनजाति में 'साँसी', 'गोरो' जनजाति की तरह मातृसत्तात्मक व्यवस्था के अवशेष मिलते हैं। जिसके सत्ता शीर्ष पर कमाई करने वाली यही अविवाहित लड़कियाँ होती हैं जिन्हें खिलावड़ी 'वेश्या' कहा जाता है। लेकिन विपर्यय यह है कि इसी समाज की लड़कियाँ शादी के बाद 'भाभी' कहलाती हैं। जिनके लिए यह पेशा तो वर्जित है लेकिन उनकी स्थिति परिवार में दयनीय होती है। इस कंजर जनजाति के इस अंतर्विरोध को लेखक ने केंद्र में रखा हैं। उसे ओझल नहीं किया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आदिवासी उस समुदाय को कहा जाता है जो नागर संस्कृति से भिन्न अपनी एक अलग सांस्कृतिक परंपरा रखते हैं तथा अपनी लोक मान्यताओं के अनुसार परंपराबद्ध जीवन व्यतीत करते हैं। जनजाति को आदिम युग का प्रणेता कहा जाता है। अतः उनके संस्कार एवं जीवन पद्धतियाँ नागर संस्कृति से अलग है। नागरीय संस्कृति से अलग एवं उपेक्षित रहने के कारण वे अपनी लोक मान्यताओं के अनुसार जीवन व्यतीत करते रहे जिससे उनका निवास अवरूद्ध हुआ। जनजातीय समाज के जीवन विषयक दृष्टिकोण एवं मानदंड एवं धारणाएँ नागरीय समाज से भिन्न है जिनके आधार पर उनका जीवन विषयक दृष्टि कोण बनता है।

भारतीय संदर्भ में देखा जाए जो विभिन्न जनजातियाँ वर्ग भेद के कारण हिन्दु धर्म से प्रताड़ित एवं उपेक्षित रही किन्तु हिन्दु धर्म का प्रभाव एवं संस्कृति का प्रभाव उनपर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विविध अधिनियमों द्वारा विविध जनजातियों को सुविधाएँ प्रधान कर उनका विकास करने का प्रयत्न किया गया। अतः इसी संदर्भ में उनके पारंपरिक जीवन विषयक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन किया गया। जनजातियों के जीवन निर्वाह का महत्त्वपूर्ण आधार उनकी अपराधिक क्रियाएँ भी बंद कर दी गई। इन योजनाओं और अधिनियमों द्वारा उनके जीवन में परिवर्तन लाया गया। जनजातीय समाज सभ्य नागरी जीवन से अनभिज्ञ

होने के कारण वे अपराधिक बने इनकी सहज पारंपरिक क्रियाओं को सभ्य नागरीय संस्कृति ने अपराधिक ठहराया और कानून उन पर निर्बंध लादे गये।

सारांश के रूप में जनजातीय समाज से तात्पर्य है कि जो समाज जंगलों और दुर्गम प्रदेशों में जीवन–जीता है और नागरीय सभ्यता से अनभिज्ञ है। उस समाज की अपनी–अपनी जीवन विषयक मान्यताएँ होती हैं जिससे वे अन्य समाज से भिन्नता रखते हैं।

–:समाप्तः–

.

तृतीय अध्याय

"'रेत' उपन्यास में चित्रित जनजातीय जीवन"

3.1 कंजरों का सांस्कृतिक जीवन

3.2 जनजातीय स्त्री का यथार्थ

3.3 पुरुष पात्र

3.4 राजनीतिक चेतना

3.5 समाज सुधार के प्रयत्न

3.6 उपन्यास की भाषा शैली

उपसंहार

तृतीय अध्याय

"'रेत' उपन्यास में चित्रित जनजातीय जीवन"

"समाज में आमतौर पर गैर आदिवासी आदमी की निगाह में आदिवासी औरत की क्या पहचान है? स्त्री जबकि पितृसत्तात्मक संरचना से बाहर आ रही है, कहीं–कहीं लगता है कि स्त्री वस्तु से व्यक्ति हो रही है। पर यह भ्रम ही है, ऐसा कुछ दिख रहा है तो कुछ चंद ऊपरी तबकों की औरतों में ही, बाकी दलित आदवासी समाज की तमाम औरतों को और भी पुरूष सामंती मानसिकता से बाहर नहीं आने दिया गया है। सदियों से चली आ रही कहावत 'गरीब की औरत सब की भौजाई' आज की भी कहावत है। इस संदर्भ में आदिवासी स्त्री न केवल व्यक्ति द्वारा शोषित होती है अपितु व्यवस्था के हर तंत्र द्वारा बलात्कार होने के लिए अभिशप्त है। अगर आदिवासी महिला का सही तरह से चित्रण जिस दन होगा आँखे फटी–फटी रह जाएँगी।"[1]

भारतीय समाज सदियों से एक मुकम्मल भाषा के अभाव में काफी हद तक सांस्कृतिक रूप में अर्द्ध–शिक्षित और पिछड़ा रह गया है। महानगरीय–संस्कृति अभिजात की रंगीन तथा चिकने पन्नों पर छपनेवाली पत्रिकाओं के पृष्ठों पर यह धारणा लगभग एक स्वीकृत तथ्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी है। लेकिन, इस वर्ग को अब बाकायदा यह उम्मीद बनने लगी है कि आम तौर पर भारतीय पुरुष वर्ग और भारतीय स्त्री वर्ग खास तौर पर सांस्कृतिक हीनता बोध से धीरे–धीरे मुक्त हो रहा है। "भारत का यह बंद समाज, भूमंडलीकरण का आश्रय लेकर एक सभ्य समाज तथा संपन्न संस्कृति जो कि निश्चित ही अंग्रेजी और अमेरिकी है, के साहचर्य से खुलने लगा है, हालांकि, उनके मुताबिक अभी उसने वांछित गति नहीं पकड़ी है। जिनका कि

---

[1] समकालीन जनमत', सं–सुनील यादव– प्रतिरोध में उठते मूक आदिवासी औरतों का स्वर', रमेश चंद मीणा–पृ. सं.–38, मार्च 2010

वे स्वप्न देख रहे हैं, इसके बावजूद इस नव–उदारवाद के आगमन के चलते शताब्दियों से पिछड़ी भारतीय स्त्री में अब एक अभूतपूर्व साहस का संचार होने लगा है, वह हिम्मत संभाल रही है। दरअसल, हुआ यह है कि अपना घर–बार संभालने के परंपरागत जिम्मेदारी में इस कदर मशगूल रही कि अपनी हिम्मत संभालना ही भूल गई।"[2] निश्चित ही इन तमाम कयासों से यह यकीन भी सच होने लगा है कि अब वह दिन ज्यादा दूर नहीं रह गया है। जब भारतीय स्त्री दुनिया के सर्वाधिक विकसित और सभ्य समाज के बराबर आकर गर्वोन्नत ढंग से जरुर खड़ी होगी। उपर्युक्त स्त्री मुक्ति की बात हमें समकालीन हिंदी कथाकार 'भगवानदास मोरवाल' कृत 'रेत' उपन्यास में देख सकते हैं। मोरवाल जी ने 'रेत' उपन्यास में कंजर जनजातीय स्त्री को अपनी कथा की विषय वस्तु बनाया है। इस उपन्यास में 'देह व्यवसाय' करने वाली खिलावड़ी (वेश्या) संसद के जनजातीय महिला उद्धार सभा की मंत्री बन जाती है। यहाँ सोचने की बात यह है कि देह का धंधा करनेवाली खिलावड़ी से मंत्री बनने तक के बीच में उसका संघर्ष, दुख–दर्द, तकलीफों का लेखक ने पर्दाफाश किया है।

3.1 कंजरों का सांस्कृतिक जीवन

सदियों से चली आ रही परंपरा को रीति कहते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी इन रीतियों का श्रद्धापूर्वक अनुकरण करती चली जाती है। समाज में नैतिकता, अनुशासन, नियम, कानून, धर्म, नीति, संस्कार, विवाह, सौहार इत्यादि बातों को एक समाज की संस्कृति कहते हैं। ये रीति–रिवाज के द्वारा अनुकरण करते हैं। ये रीति–रिवाज, विवाह, पर्व व त्यौहार लोगों में नवजीवन का संचार कर देते हैं। निराशा से आशा की ओर, विषाद से हर्ष की ओर दुक से सुख की ओर घृणा से स्नेह की ओर ले जाते हैं। मनुष्य को मनुष्य के निकट लाकर उनमें एक सूत्रता को स्थापित करती है। आपस में राग–रस स्नेह विश्वास व एकता मजबूती प्रदान करती है।

---

[2] स्त्री देह का बाजार और स्त्री की जय पराजय, ले– प्रभुजोशी'– कथादेश–अगस्त–2008, पृ.–33

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता है– "सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का।" [3]

डॉ. हेमेंड वानेरी' ने भारतीय संस्कृति के संबंध में अपना विचार व्यक्त किया है– "संस्कृति वह सीखा हुआ व्यवहार है, जिसके द्वारा मानव पशु–जगत से पृथक होकर सभ्य कहलाता है। संस्कृति का अर्थ किसी समाज की जीवन पद्धति से है, जिसमें उसकी कला, शिल्प, विश्वास, मान्यताएँ, मूल्य जीवन दर्शन, संस्कार प्रथाएँ, धर्म आदि सब समाहित है। मानव व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कृति ही सहायक होती है।"[4]

कंजर जनजाति आमतौर पर देखा जाए तो ये अपराधी जनजाति हैं। वे ज्यादातर हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्रों में बसे हुए हैं। कंजर का अर्थ है "कंजर यानी कननन्वरा, काननचर अर्थात् जंगलों में घूमनेवाला। प्राचीन भारत में सबसे प्रमुख खाना–बदोश जाति। उत्पति माना गुरू और माँ नालिन्या माना यानी दिल्ली के मुसलमान बादशाह के मल्लू–कल्लू नाम के दो पहलवानों को हरानेवाले आदिवासी। 'नेस्फील्ड' के अनुसार कंजरों की सात उपजातियाँ हैं, किंतु मुख्य चार ही अर्थात् कुछ बंध जो झाडू हैं। पत्थरकट जो पत्थर काटते हैं। जल्लाद, जो मरे हुए जानवरों को उठाने के साथ–साथ फाँसी भी देते हैं और स्वच्छंद जो जुलाहों का करघा बनाते हैं।"[5] 'कड़ा' इलाहाबाद जिले का एक गाँव है जहाँ माना गुरू का शव दफनाया गया था। और 'विजयगढ़'– अलीगढ़ जिले का एक गाँव, जहाँ अपनी कुलदेवी–देवताओं की स्मृति में एक चबूतरा बनाया गया है। यहाँ भादों के महीने में नौवें दशक के आरंभ तक मेला लगता था। ये दोनों कंजरों के पवित्र स्थान हैं।

औपनिवेशिक प्रशासन के एक अंग्रेजी अफसर 'किंग जेम्स' ने 1871 में पहलीबार भारत की इन जनजातियों को अपराधी और जरायम–पेशा घोषित करते हुए कानून बनाया था। इसमें 1886 से लेकर 1924 के बीच अंग्रेजी कानूनविदों जेकिंस सर,

---

[3] हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सास्कृतिक बोध–संजीव भनावत–पृ.–3
[4] नागार्जुन के उपन्यासों में जनजीवन–डॉ. जय किशन–पृ.–76
[5] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–44

अलेकजेंडर कारड्यू, सर जेम्स क्रेशर ने नई संशोधन करके इसे बहुत कठोर बना दिया था। लेखक के अनुसार "1840 में इन जनजातियों पर भीषण अपराध करने का पहली बार शक किया गया। इसीलिए मिराठ से मद्रास तक राहजनी में लगे अनगिनत कंजरों को गिरफ्तार किया गया। 1870 में जिला हमीरपुर के मजिस्ट्रेट ने इनके खिलाफ सख्त कार्रवाई की सिफारिश की और 1874 तक आते–आते उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर, मथुरा, तथा आगरा जिलों में कंजरों ने जो उपद्रव और उतपात मचाया, उससे अंग्रेजो को उनमें विद्रोह की बू आने लगी।"[6]

"क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट, 1924 के तरह ऐसी था। जराजय–पेशा जातियाँ नोटिफाई की गई थी. कहना ना होगा की आजादी के बाद भी तथा कथित सभ्य समाज के धनी मानी और बाहुबली लोगों द्वारा तथा सर्वोपरिपुलिस द्वारा इन जनजातियों का नृशंस दमनजारी रहा। उनके चरित्र पर लगा धब्बा अभी भी नहीं मिटा और उनके समाज का दृष्टिकोण बदला।"[7]

माना गुरू और माँ नालिन्य की संतान एवं कंजर जनजाति की त्रासद जीवन गाथा को उकेरने के लिए लेखक ने गाजूकी नामक कंजरों की बस्ती, विशेषरूप से उसके कमला सदन के एक परिवार को आधार बनाया है। कंजर जनजातीय समाज में दो परिवार के लोग रहतें हैं। पहले परिवार की अविवाहित लड़कियाँ देह का धंधा करती है। जो देह व्यवसाय करने वाली स्त्रियों को बुआ कहते हैं। दूसरा परिवार वह है जो इस समाज की लड़कियाँ शादी के बाद 'भाभी' कहलाती हैं। जिनके लिए यह धंधा वर्जित है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि इस परिवार को कंजरों में दोयम दर्जे का माना जाता है। उनकी स्थिति परिवार में दयनीय, खटने वाले नौकरों जैसी होती है। कंजर जनजाति का पुरुष मुख्य व्यवसाय अवैध शराब बनाने के साथ–साथ चोरी और नकाब जनी के अपराध भी उनकी पेशे में जुड़जाते है। इस जनजाति में ज्यादातर मातृसत्तात्मक अवेशष मिलते हैं।

---

[6] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–48

[7] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–49

कंजर जनजाति की अविवाहित लड़कियाँ देह व्यवसाय अपनी इच्छा के अनुसार करती हैं। वह देह धंधा करना या परिवार में ब्याह करके घर बसाना उनकी मर्जी से होता है। संतो की बेटी पिंकी को चौदह साल के उम्र में पूछा जाता है कि तुम क्या बनोगी? तब उत्तर में पिंकी कहती है– "पिंकी ने सबकी ओर देखकर अंतिम बार अपनी रूक्मिणी बुआ की आँखों में देखा या सकुचाते हुए कहा 'बुआ'। और जोर से बोल! पिंकी का हौसल बढ़ाया रूक्मिणी ने। 'बुआ'! पिंकी की थोड़ी सी आवाज और खुली। एक बार और पिंकी बुआ। बुआ।"[8]

पारिवारिक रिश्तों की दृष्टि से भी कथा के कई अंश चमत्कृत कर देने वाले हैं। माँ–बेटा और माँ–बेटी के रिश्तों की पवित्रता और निकटता अनिर्वचनीय होती है। लेकिन वही जब एक माँ संतो अपनी बेटी पिंकी को पूछती है कि तुम बड़ी होकर क्या बनोगी। पिंकी उत्तर देती है– 'बुआ' संतों अपनी बेटी के उत्तर से मन ही मन प्रसन्न होती है। और वैद्यजी से इस प्रकार कहती है– "वैद्यजी, बुआ ही ठीक है..... बुआ बनके कम से कम मेरी तरह नरक तो न भोगेगी।"[9] वह नहीं चाहती है कि पिंकी उसकी तरह भाभी बने। उसे खुद ही क्या मिला भाभी बनकर, चौका, चुल्हा और बच्चे संभालना बस। जिंदगीभर दुखी ही तो मिला है।

कंजर जनजाति की रीति–रिवाज एवं परंपराओं को भी पाठक के समक्ष रखने का भरसक प्रयास किया है। कुछ रीतियाँ हिंदुओं से मिलती–जुलती है तो कुछ बिल्कुल उनके विपरीत है। इस समाज में लड़की वालों से दहेज लेने के बजाय उलटा दिया जाता है। यहाँ सुशीला का बेटा मंगल के विवाह में देख सकते हैं। कमला बुआ कहती है– "असली बात यह है कि वैद्यजी की छोरी सुंदर बहुत है। कम से कम यह खिलावड़ी तो अपनी तरह जगेगी। तो इसकी कीमत है साढ़े तीन लाख। मेरे हिसाब से

---

[8] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–127

[9] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–11

तो, मरे यह भी कम है। यह भली रीति हुई कि लड़किवालों से दहेज लेने के बाजय उलटा दिया जा रहा है। यह तो लड़की को खरीदने जैसा होगा।"[10]

विवाह आदि जैसे शुभकार्यों की शुरूआत हल्दी की गाँठी से हिंदुओं में भी की जाती है। कमला बुआ का पोता 'मंगल' के विवाह में मंत्र नहीं पड़े जाते, भाँवरे नहीं पड़ती कारण कमला बुआ खुद बताती हैं– "न वर वधू के ग्रह–नक्षत्रों का मिलान, न मंगल–अमंगल का विचार। वैसे भी पंडित–ब्राह्मन, इज्जतदारों के यहाँ आते हैं भाँवर डलवाने, कंजरों के यहाँ कहाँ। ऐसे में कथा पत्रा और क्या मुहूर्त। जिनके वेद पुराण, उनके पंडित–ब्राह्मन। अपना हाथ, जगन्नाथ बिना पंडित–ब्राह्मन के जैसे और शादी ब्याह हो चुके हैं, यह भी हो जाएगा।"[11] हिंदुओं में स्त्रियाँ अपने मासिक धर्म के दिनों में चौक में प्रवेश नहीं करती। कंजरों की स्त्रियाँ भी इसका पालन करती हैं। संतो कहाती है– "सवेरे से तो खट रही बूँ। झाड़ू–पोंछा सब कर दिया है। बस कपड़े ही बचे हैं। महीने से नहीं होती तो अब तक रोटी–पानी सब कर देती।"[12]

कंजर जनजाति में विवाह के अंत समाप्त में एक कार्रवाई देखने को मिलता है ये कार्रवाई पूरी पाश्चात्य संस्कृति से जुड़ा है। यहाँ मंगल और संतो की विवाह की रशिप्सन कहते हैं। लेखक कहता है– "सारी तैयारी हो गई महफिल की। ऊपर खुली छत पर एक तरफ डी.जे. तो ठीक उसके सामने दीवार के सहारे नीचे फर्श पर मुलायम गद्दे बिछा कतार में गा–तकिए लगवा दिए गए। अपनी परिकल्पना के अनुसार कमला बुआ ने मेहमानों के बैठने की ऐसी व्यवस्था करवाई कि आनेवाले को पहली नजर में लगे, वह सचमुच किसी महफिल में आया है। अधिकतर आमंत्रित अतिति आ चुके हैं। रिटायर्ड एस.एस.पी. राठौर, भारत ईंट–भट्टे का मालिक रामपत यादव, ताउम्र समाजवाद की टोकरी ढोने के बाद हाल ही में एक तथाकथित उग्र राष्ट्रवादी पार्टी में शामिल हुए तिवारी जी, रीयल एस्टेट के नाम पर खाली पड़ी सरकारी जमीनों पर

---

[10] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–22

[11] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–23

[12] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–49

अवैध कब्जा जमानेवाला गुप्ता प्रॉपर्टीज का मालिक गुप्त, शेयर दलाली में नया–नया हाथ डालनेवाला और राज्य सचिवालय कैंटीन का ठेकेदार आहूजा जैसी–नामचीन हस्तियो का महफिल में आगमन हो चुका है। नंदजी और फौजी सहित घर के अन्य विशिष्ट अतिथि भी आ चुके हैं।

शादी की ज्यादातर रस्में शाम–शाम होते–होते पूरी कर ली गई। रूक्मणी, वंदना, पूनम सहित महफिल में जान डालने के लिए विशेष रूप से बुलाई गई तारा, सलमा और ज्योति को पहले ही निर्देश दे दिया गया कि महफिल में ऐसा रंग जमाना चाहिए कि आनेवाले मेहमान बरसों तक इसे याद रखें। बावजूद इसके बुआ का जी ठिकाने नहीं है। एक अनजानी आशंका से वह बेचैन हुई जा रही हैं। अपनी इसी आशंका से मुक्त होने की गरज से एक बार फिर चल दी उन्हें याद दिलाने। कमला बुआ बेचैन से तारा के कमरे में देखते ही तारा ने पूछा, "बुआ सब ठीक तो है? वैसे तो सब ठीक है पर पता ना मरा मेरा जी बहुत घबरा रहा है। कहीं कोई कमीबेशी ना रह जाए। तू बेफिकर रहा हम सब संभाल लेंगी। हमने भी बड़े–बड़े इज्जतदार देखे हैं....... और फिर हम ऐसी आइटम तैयार करके लाई है कि अगर तेरे ये मेहमान देखते ना रह जाएँ, तो नाप बदला देना हमारा....... क्यों सलमा? तारा ने बेफिक्र होते हुए बुआ को आशस्त किया।"[13] मान गई पूरी गाजूकी कमला बुआ ने कितने उसके से इज्जतदारों का दिल जीत लिया। यहाँ तक कि तारा, सलमा और ज्योति को भी उम्मीद नहीं थी कि ऐसी महफिल जमेगी। इसलिए इनकी विदाई के समय बुआ ने पूरा दिल खोल कर कहा था बहुत अच्छा किया हैं।

इस समुदाय में सगुन–अपसगुन का भी विचार किया जाता है। किसी काम के लिए जाते हुए रास्ते में कुछ दिखाई देने पर लोक विश्वास की तरह मान लेते हैं। यहाँ एक विश्वास है कि "क्या ऽऽऽ बाईजी, वह तो जंगली सुअर था। वैसे एक बात

---

[13] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–30

बताऊँ बाईजी, अच्छे काम पर जाते हुए अगर रास्ते में सुअर दिखाई दे जाए, तो समझलों काम बन गया।"[14]

कंजर समाज मातृ सत्तात्मक लगता है क्योंकि कमला सदन में बुआ की तथा गाजूकी के अन्य घरों में भी स्त्रियों की ही चलती है, लेकिन अतः बाह्य सभी प्रकार के विवादों को निपटाना पंचायत करती है जिसमें पाँच पुरुष होते हैं, यह विडंबना है।

पंचायत में 'धरोड' (जो दंड का विधान है) करने की भी परंपरा होती है। वाद–प्रतिवाद में से जो भी पाँचों की बात पर अमल नहीं करता उसकी धरोड जब्त कर ली जाती है। कंजर जनजातीय समाज में एक नियम है। नियम यह है कि कोई पुराने खिलावड़ी के ग्राहक को नई खिलावड़ी उस ग्राहक को फुसलाना अपराध माना जाता है। क्योंकि यह तो उसकी रोजी–रोटी पर निर्भर करता है। इस मसले की पंचायत में शिकायत की जा सकती है। इस विषय में पारिवारिक संबंध भी हो तो भी दंड भुगतना पड़ता है। गलती हर हालत में गलती ही मानी जाती है। देह व्यवसाय में कोई किसी का नहीं होता, धंधा–धंधा होता है। यहाँ सुशीला के कज्जा (ग्राहक) को उसकी बहन माया भड़काती है कि इस मसले पर सुशीला पंचायत में माया पर शिकायत करती है। सुशीला कहती है– "माँ, मैं इस माया को कही का नहीं छोड़ूँगी। एक–एक कज्जा के लिए इसे मोहताज ना कर दिया, तो सुशीला ना मेरा नाम!"

सुशीला, माफ कर दे। बहन है तेरी पहले दफे गलती की है। जित्ते का नुकसान हुआ है तेरा, उसकी मैं भरपाई कर दूँगी।

"यह तो उसे तभी सोचना चाहिए था, जब उसने मेरा कज्जा तोड़ा था। रही बात बहन की, तो धंधे में नहीं चलते हैं ये रिश्ते–नाते....धंधे में खिलावड़ी, खिलावड़ी होती है। कोई बहन–वहन नहीं होती है।" "तो फिर तू ही बता मैं क्या करूँ?"

"करना क्या, मैं इसे पंचायत में ले जाकर ही मानूँगी।" "इत्ता आगे की मत सोच सुशीला। अच्छा है घर का झगड़ा, घर में निपट जाए...... ऐसा जुलम मत कर।" "माया,

[14] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–186

बेटी बता, मैं क्या करूँ? अच्छी फँसी मैं तो तुम दोनों के बीच।" माँ, तुझे अपनी बहन का कज्जा तोड़ने की क्या जरूरत आ पड़ी। गाजूकी में रोज न जाने कित्ते एक से एक कज्जा आते रहते हैं। पता न, मरी तुझे भी क्या सूझी। "कज्जा तोड़ा है, कोई खसम नहीं छीना है मैंने उसका...... वैसे भी कौन सा मैं गई थी उसके पास। नहीं जाती है। सब खुद ही चलकर आते हैं खिलावड़ी के पास।"

"फिर बता इसमें मेरा क्या कसूर है?"

वो बात ना है माया। जिसका इत्ता पुराना लगा–बँधा कज्जा टूटेगा, उसे उसका दुःख तो होगा ही।

"मैं मांग तो रही हूँ माँ माफी।"

"पता ना, उसके सिर पर आज कैसे भूइयाँ (कंजरों की तीन देवियों में से एक देवी का नाम है) सवार हुई पड़ी है। एक बात कहूँ माँ, कोई किसी का लगा–बँधा नहीं होता। यह तो ग्राहक की मर्जी है क्या पता, सुशीला से जी भर गया हो। जो आदमी पैसे लुटा रहा है यह तो उसकी मरजी का सौदा है कि वह किसी के पास जाए...... और जब एक आदमी मेरे पास चलकर आया है, तो मैं कैसे मना कर देती। ठीक है ना कर। अब भुगता। लड़ो दोनों एक दूसरे का छोंटा पकड़के। दिखाओं पूरी गाजूकी में नाच। नाच तो सुशीला दिखा रही हैं माँ। पंचायत में मैं ना वही जा रही हैं। करो, जो तुम्हें अच्छा लगे। माँ, अब जो होगा देखा जाएगा। कमला, कोई ऐतराज तो ना है पंचों का फैसला मानने में? मुखिया ने पूरी पंचायत के सामने पूछा। ना। ठीक है, तो फिर दोनों मुदी की चीरणी सुन पंचों ने यह माना है कि माया से गलती हुई है। चाहे यह भूल से हुई है या उसने जानने की है........ गलती तो गलती है। तो पंचों, माया को गुनहगार मानते हुए पंचायत ने फैसला किया है कि एक महीने तक उसके पास किसी कज्जा को फटकाने नहीं दिया जाएगा......... पंचों, मुझे ना है मंजूर। सुशीला फैसले पहले पूरा सुन ले फिर कहियों कुछ। साथ ही पंचों ने यह फैसला किया है कि अपनी सगी बहन का लगा धंधा कज्जा तोड़ने के गुनाह में माया के माथे के ऊपर के बाल काटने का हुकम दिया जाए। माया आगे आओ। माया, सिर से पल्लू हटा। कमला ले

जा माया को घर। इतना कह मुखिया ने पंचायत का विसर्जन की घोषणा कर दी। दोनों पक्षों की धरोड़ उन्हें वापस लौटा दी।"[15]

कंजर जनजातीय समाज में कत्ल (कतल) भी होते हैं। इनकी रक्षा के लिए पुलिस भी नहीं जाती है। क्योंकि पंचायत का कानून होता है उसके कानून के जरिए सज़ा का फैसला होता है। रूक्मिणी से वैद्यजी कहती है– "एक बात बताऊँ बैद्यजी, हमारे, कंरजों में कतल भी हो जाए फिर भी पुलिस नहीं आती। हाँ, हमारी बिरादरी की पंचायत जो फैसला करती है, वह सिर माथे पे। इसलिए मरे, मरी सलाह मान, अपने रास्ते आ और अपने रास्ते जा।"[16]

गैर जनजातीय समाज में अपराधी को सरकार के मार्फत से सजा देने में सालों लगेंगे परंतु गनीमत है कि कंजर समाज में अपराध को पंचायत के जरिए सजा देने में महीनें भी नहीं लगते हैं। इससे लगता है कि गैर जनजातीय समाज से कंजर जनजातीय समाज आगे हैं।

इस परिवार के पुरुष यथावर चोरी और नकब जनी के अपराध भी उनके पेशे में शुमार किए जाते रहे हैं। वे चोरी करते–करते पकड़े जाते हैं। तब हवलदार रामसिंह अपने थानेदार से कहता है– "यह देखों जनाब, खंता नकबजनी के। खंता ऽऽ.......जान हवलदार के शब्दों के दोहराया थानेदार ने। हाँ, जनाब, बड़े खतरनाक हथियार हैं ये। चौखट के नीचे जाने से ही चोरी के लिए छेद करते हैं......... और यह खंता, जनाब यह इनका प्यारा हथियार है। इससे ये घास काटते हैं, इसी से सियार मारते हैं...... साँप–सेह के बिल भी इसी से खोदते हैं.........................और जनाब, रस्सी से ये नकब भी लगाते हैं। जनाब, इनका चोरी करने का तरीका बड़े मजेदार होता है। नकबजनी तो थे बड़े होशियारी से करते हैं। कभी–कभी ये बाबरियों की तरह साधु के भेष में निकलते हैं और जो सबसे बुजुर्ग कंजर होता है, उसे गुरू बनाकर गाँव के बाहर किसी पेड़ के नीचे बैठा देते हैं। बाकी के कंजर भीख मांगने निकल जाते हैं। जनाब, वे

[15] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–87–91

[16] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–81

औरत के जेवर देखकर तय करते हैं कि किसघर में नकब लगाई जाए। आमतौर पर ये दरवाजे के बराबर दीवार में जान से छेद करते हैं, और उसमें हाथ डालकर अंदर की कुंजी खोल लेते हैं।"[17]

संजीव का उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में पश्चिमी चंपारण की 'थारू' जनजाति के पुरुषों को वहाँ के जमींदार ने डाकू बनाकर चोरी करने मजबूर करते हैं। सारा का सारा जमींदार ही लूटते हैं। अंततः वे पछताते हुए वैयक्तिक रूप में चोरी करने लगते हैं– "और परेमा परशुराम, बिदा, गोकुल सरीखे डाकुओं की एक ही दस्तान थी, मकान ढहा जमीन गई, क्या खाएँ, कहाँ रहे? फिर वे उगते हैं यहाँ के जमीदारों के पास, मिल के सेठों के पास जबरन वसूल, बेगारी, बलात्कार, दमन, इसकी ट्रेनिंग यही मिलती है। कुछ दिनों बाद वे सोचते हैं कि जमींदार और सेठ हमारे ही बल पर यह सब करते हैं तो हम खुद क्यों न करे, तब शुरू करते हैं स्वतंत्र डकैती।"[18] यह प्रवृत्ति सिर्फ कंजर, थारू ही नहीं नट, भील, बंजारा जनजातियाँ चोरी नकब, हत्य–मर्डर जैसे अपराध करती हैं।

3.1 रेत में जनजातीय स्त्री का यथार्थ

हिंदी साहित्य में वेश्या जीवन की प्रेम कथाओं का आधार लेकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। प्रेमचंद का 'सेवासदन', निराला का 'अप्सरा', भगवतीचरण वर्मा 'चित्रलेखा' और जगदंब प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर' आदि। वेश्या जीवन के प्रेम को विस्तार देना लेखक का उद्देश्य न होकर बल्कि वेश्यावृत्त जैसी कुप्रथाओं को नष्ट करना है। इन उपन्यासों की वेश्याओं का प्रेम वहीं है जो एक सामान्य प्रेमिका का होता है। क्योंकि ये मूलतः वेश्या नहीं बल्कि आर्थिक स्थिति मजबूरी ने इन्हें वेश्या बना देता है।

"आज की नारी चाहती है नारीत्व, जिसका अपना एक पृथक अस्तित्व हो। अपना एक अहं ही, गौरव हो। अपना स्वाभिमान, अपनी उपयोगिता, अपनी सार्थकता

[17] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–42–43

[18] जंगल जहाँ शुरू होता है– संजीव पृ.–105

हो। जो न पुरुष से जरा भी हीन माना जाए न पुरुष की बराबरी में अपनी क्षमताओं का अपव्यय करे। जो पुरुष का पूरक हो, उसकी प्रेरणा हो, उसका मार्गदर्शन करने वाला हो। उसका सहयोगी हो घर, बाहर, सभी जगह सभी क्षेत्रों में दोनों ही समान भागीदारी हो। नारी पुरुष के संबंधों का आधार मानवीय प्रेम, सम्मान और सहकार हो। नारी–पुरुष के संबंधों का आधार मानवीय प्रेम, सम्मान और सहकार हो। नारी का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना अतिआवश्यक है। जब तक नारी आर्थिक रूप से पुरूष पर निर्भर रहेगी तब तक उस पर अत्याचार होते रहेंगे।"[19]

वेश्यावृत्ति एक ऐसी सामाजिक कुरीति है जो अत्यंत हेय एवं निंदनीय है। इस दुराचार के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं वैयक्तिक बाध्यताएँ करण बनती हैं। वेश्याओं की मौजूदगी हमारे समाज का ही दोष माना जाता है। आर्थिक विषमता व मजबूरी के कारण ही नारी वेश्या बनती है। पुरुष की कामवासना के कारण भी नारी वेश्या बनती है। समाज में पुरुष को नहीं केवल नारी को ही नीच दृष्टि से देखा जाता है। नारी दुर्भाग्यवश या आर्थिक विषमता के कारण वेश्या बनती हैं। वह भी अपना जीवन किसी एक व्यक्ति के सहारे बिताना चाहती हैं।

समाज में नारी को अनेक स्थितियों में अत्याचार सहने पड़ते हैं। गरीब परिवार की नारियाँ ही अधिकतर वेश्यावृत्ति करने के लिए विवश हो जाती हैं। जीविका चलाने जैसे स्थितियाँ उसे वेश्या बनने के लिए विवश कर देती हैं। वेश्यावृत्ति में नादान लड़कियों को और स्त्रियों को फंसाने का काम कभी–कभी औरत भी करती हैं। महानगरों में ज्यादातर औरतें वेश्यावृत्ति की ओर बढ़ रही हैं। अपना परिवार चलाने के लिए विवाहित स्त्रियाँ भी घर की चौखट छोड़कर बाहर आ रही हैं। ज्यादातर औरतें, अनपढ़ गंवार व गरीब होने के कारण वेश्या जैसी धंधे करने के लिए मजबूर हैं। ज्यादातर पुरुष जो दिन–भर मजदूरी करके उन पैसों को शराब पीने में खर्च कर देते हैं। समाज में इस तरह के अत्याचार दिन ब दिन बढ़ते जा रहे हैं। वेश्यावृत्ति में एक तरफ देखा जाए तो नारी का मानसिक तौर पर हनन किया जाता है।

[19] नागार्जुन के उपन्यासों में जनजीवन–डॉ जय किशन–पृ.–48

बीसवीं सदी का अंतिम चरण भारतीय इतिहास का अत्यधिक महत्वपूर्ण मोड़ है। इस उथल–पुथल के हम स्वयं साक्षी हैं। सामाजिक व सांस्कृतिक अस्थिरता के झोंकों से देश के जन–मन में, हाल में मिली आजादी के प्रति नया उत्साह जगा है। विविध वर्ग और व्यक्ति सभी अपने–अपने अस्तित्व की पहचान स्थापित करने के लिए व्यग्र है। व्यग्रता सभी को विचित्र बेचैनी से भर गई है। जैसे, देश में क्षेत्रीय, सांप्रदायिक जातीय, वर्गीय, सेक्स संबंधी पहचान और स्वीकृति के लिए सब ओर से मानो आक्रामक प्रयासों की बाढ़ सी आ गई है।

कंजर जनजातीय समाज में जो स्त्री विवाह करके घर बसाती है उसे 'भाभी' कहते हैं। इस समाज में भाभी बनना दोयम दर्जे का काम माना जाता है। भाभी परिवार को नकारते हुए कमला बुआ कहती है– "क्या मिलता है ब्याह करके। जिंदगी भर खसम और औलाद के साथ–साथ और भाभी–सासी, ननद की चाकरी ही तो करनी पड़ती है। मेरी, बुआ बन रहती तो उमर भर मजे करती। जो एक बार इस लाइन में डल गई वह जिंदगी भर बुआ बनी रहेगी, ब्याह नहीं करेगी और जो भाभी बन गई वह धंधा नहीं करेगी।"[20] कंजर समाज में बुआ को उच्चस्तर का माना जाता है।

जो परिवार में पहली बार देह धंधा करती उसे 'मत्थाढकाई' कहते हैं। 'मत्थाढकाई' करने वाले 'इज्जतदार' को उस परिवार में उसे दामाद के रूप में स्वीकार किया जाता है, उसे पति की तरह कभी भी अपनी इच्छा को पूरी करने की छूट मिलती है। 'मत्थाढकाई' होने के बाद स्त्री देह–व्यवसाय, शुरू करती है। बिना मत्थाढकाई कोई भी धंधा नहीं करती है। मत्थाढकाई को कंजर समाज में त्यौहार की तरह मानते हैं। वैद्यजी को समझाते हुए कमला बुआ कहती हैं– "वैद्यजी हमारे यहाँ जो इज्जतदार मत्थाढकाई करता है, उमर भर उसका जमाई की तरह मान लिया जाता है। एक ब्याहता मर्द की तरह अपनी खिलावड़ी के पास आने–जाने की पूरी छूट होती है। उससे कभी पैसा नहीं लिए जाते हैं बल्कि जमाई की तरह पूरे नेग–दस्तूर के साथ उसकी बिदाई दी जाती है। वैसे भी वैद्यजी, मत्थाढकाई जिंदगी में एक ही दफे ही

[20] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–22

होता है। ये समझ ले इस बहाने, जमाई के चाव–चोंचले पूरे हो जाते हैं।"[21] यह कार्रवाई कंजर जनजातीय समाज में शादी की तरह मनाया जाता है। जो खिलावड़ी धंधा करती है, वह रात में खाना नहीं खाती सिर्फ नमकीन ब्रेड, जूस आदि चीजों से भूख मिटाती है। रुक्मिणी कहती है– "बुआ तुझे पता तो है कि खिलावड़ी रात को खाना नहीं खाती है पता है मरी, इसलिए तो मैंने पहले ही ब्रेड, पनीर और अमरूद का जूस मँगवा दिया है।"[22]

थाने में देह व्यवसाय करने वाली को 'रजिस्ट्री' कहते हैं। यहाँ देहधंधा का मतलब वेश्यावृत्ति से है। हवलदार कहता है अगर हम शाम को वहाँ जाएँगे तो एक या दो रजिस्ट्री मिलेगी और साथ–साथ ग्राहक भी। अगर सही समय जाने से देशी दारू भी मिलेगी हवलदार रामसिंह अपने जनाब केसर सिंह से कहता है। "जनाब, रजिस्ट्री से मेरा मतलब खिलावड़ी से था। खिलावड़ी? जी जनाब खिलावड़ी, मेरा मतलब जो धंधा करती है। और यह 'रजिस्ट्री'? थाने में इन्हीं को रजिस्ट्री कहते हैं जनाब। वो तो तब भी मिल जाती जब हमने छापा मारा था। तब बहुत देर हो चुकी थी जनाब। अगर हम साँझ होते तो कुछ रजिस्ट्री तो रंगे हाथ हत्थे चढ़ जाती बल्कि एकाध मोटा सामान, मेरा मतलब है ग्राहक भी हाथ लग जाता है। इतना ही नहीं जनाब उस टैम मौके पर कंजर हिस्की (देशी दारूँ) भी।"[23]

जबसे अंग्रजों का भारत पर आधिपत्य हुआ, तब से आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन पर से अधिकार समाप्त हो गए। आदिवासी जनजीवन, पूर्णरूप से प्रकृति पर ही निर्भर था। ईंधन के साधन, भोजन, शिकार, खेती आदि के लिए वे प्रकृति पर ही आश्रित थे। कुल मिलाकर वे प्रकृति के अधिक निकटतम थे। प्रकृति से उनका अटूट संबंध था। जंगल में अंग्रेजी अधिकारी को नियुक्त किया गया ताकि कोई आदिवासी जंगल की वस्तुओं का लाभ ना उठा सके। यदि गलती से भी कोई

---

[21] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–27

[22] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–30

[23] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–47

आदिवासी जंगल में घुस भी जाए तो जंगल बाबू को जुर्माना अदा करना पड़ता था। आदिवासी स्त्रियों, कुमारियों के लिए तो यह जुर्माना उनकी देह से चुकाना पड़ता था। आदिवासी समाज की 'बिरहोर' जाति की एक लड़की ने जंगल में वानर (बंदर) पकड़ा तो महाजन ने उसके दंड का जुर्माना उस लड़की की देह से लगाया। राकेश कुमार सिंह के उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' में यहाँ जंगल बाबू कहता है– "तूने जंगल में घुसकर वानर काहे पकड़ा? महाजन कह रहा था, गोरमिट का हुकुम उठाती है तो डंड कौन भरेगा? अब नहीं पकड़ेगी वानर, लड़की घिघिया रही थी, अब की भर जान बकल दे साऊ। जाने कैसे दे रे? तुझे तो जंगल बाबू के पास चलना ही होगा। तू जंगल बाबू को मन खुश कर दे..... छूट जाएगी।"[24]

आगे 'राकेश कुमार सिंह' लिखते हैं– "जंगल बाबू को प्रसन्न करने का अर्थ हर वनवासी जानता था। महाजन जरूर जंगल बाबू के पास सलायी देने जा रहा था। सलायी के रूप में कै साथ आज अनाज नहीं, दे थी। जंगल बाबू को यदि 'बिरहोर लड़की पसंद आ गयी तो उसके साथ सोएगा जंगल बाबू।'"[25]

गैर सवर्ण जातियों का समृद्ध तबका भी इस संघात में शामिल हो गया। जैसा की हम जाते हैं और गैर सवर्ण 'जातियों का यह समृद्ध तबका अपनी मानसिकता में दलितों, आदिवासियों, स्त्रियों इत्यादि के प्रति उतना ही सामंतवादी, सवर्णवादी है जितना की कोई सामंत या सवर्ण। बल्कि कुछ ज्यादा ही। यहाँ कस्तूरी कहती है कि– "यह देसी फिरंगी हमें परेड के लिए नहीं, हमारी छातियाँ नापने के लिए बुला रहा है। बुलाया है तो जाना पड़ेगा कस्तूरी। मैं तो देख चुकी हूँ। इस दरोगा को दरोगा नहीं पूरा जल्लाद है। जरा भी रहम नहीं है मरे के। 'बचनों' तेरे मेरे जाने में कोई हर्ज नहीं है पर सबको बुलाने का मतलब का है? मतलब हमसब को पता है। अपनी ही मुलक में हमारे दो–दो बैरी हो गए। पता ना देवी 'मारी', 'प्रभा' ही भूइयाँ, माँ से पीछा छुड़ाएँगी। असली बैरी तो अपने ही हैं। देखती ना है आए दन गाजूकी में राय साहब, दीवान साहब, राय बहादुर और खाना बहादुरों की कैसी लैन लगी रहती है। ये सब

---

[24] जो इतिहास में नहीं है, राकेश कुमार सिंह, पृ.–46
[25] जो इतिहास में नहीं है, राकेश कुमार सिंह, पृ.–47

और कुछ ना हैं इन फिरंगियों के कोरे दलाल हैं। असली हुकूमत फिरंगी नहीं इनके ये बहादुर साह और ये दरोगा जैसे भड़ुए कर रहे हैं। जो भी हो बचनों, वह तो भोगतना ही पड़ेगा अब।"[26]

राकेश कुमार सिंह का उपन्यास 'पठार पर कोहरा' मैं रंगेनी का बलत्कार होता है। लेखक कहते हैं– "जब भी न कही दाई के टीले के पीछे ही कब्रिस्तान है जहँ एक चट्टान के नीचे गड़ा है होकाना। जब भी रंगनी निकटी ढाई के ढीले से गुजरती, कब्रिस्तानी की ओर आती उतराही बयार के साथ होकाना उसे छुने दौड़ पड़ता। उसके कान में फुसफुसाने लगता–डरना मत रे। ताकत का जुमाना। ताकत को ही मान देती है दुनिया। धरती भी। आकाश भी। कोई किसी का लोर–बेटा नहीं पोंछता यहाँ।"[27]

लेखक कहता है– "कोई आती थी अपने बाबा–भाई द्वारा लिए गये पुराने कर्ज का सूद चुकाने। कोई आती थी जाने अनजाने निषिद्ध वन क्षेत्रों में प्रवेश कर दंड भोगने। हँडिया के नशे में मताल कोई आदिवासी यदि राजा 'गोयके' के घोड़े के सामने पड़ जाता तो उसके घर की लड़की की उसके अपराध का दंड भोग सकती थी। अपराध का दंड या प्रायश्चित बिना गुनहगारी भरे कैसे संभव था?"[28]

कंजर जनजाति की अविवाहित लड़कियाँ देह व्यवसाय करती हैं। इसे उनकी भाषा में 'खिलावड़ी' कहते हैं। खिलावड़ी किस तरह अपना 'कज्जा' (इज्जतदार) को भड़काती और उसकी भूख मिटाती हैं। इस संदर्भ में हेमा खिलावड़ी की करतूत देखने लायक है–

"गाजूकी तरफ बढ़ते हुए कदमों गति शुरूआत में सामान्य से अधिक थी, धीरे–धीरे धीमी पड़ती चली गई। उसने दूर से ही सारे खोकों को निगाह में उतार लिया। एक पल रूककर उसने मोबाइल पर कोई नंबर डायल किया। दूसरी तरफ से दिए गए संकेत और निर्देशों के ले वह 'हेम कम्युनिकेशन सेंटर' की ओर बढ़ गया। उसकी चाल में फिरते तेजी आ गयी।"

---

[26] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–52–53

[27] पठार पर कोहरा–राकेश कुमार सिंह, पृ.–74

[28] जो इतिहास में नहीं है– राकेश कुमार सिंह–पृ.–85

चेहरे—मोहरे से साफ है कि यह भाँतू नहीं 'कज्जा' है।

'हेमा कम्युनिकेशन सेंटर' पर पहुँचकर, उसने चारों तरफ बारीक निगाह मारी और जेब से पैसे निकालने के लिए जैसे ही कागजों के छोटे से पुलिंदे को बाहर खींचा कि सौ और पचास के कई नोट ऊपर सरक, खोखे की ओर देखने लगे।

"एक पैकट चाहिए! सौ का नोट खोखे के ओर बढ़ाते हुए उसने कहा।"

"कित्तेवाला?" एक रहस्यमय मुस्कान उछली खोखे से।

"ज्यादा मँहगा ना हो।" सौ के नोट ने हवा में लहराते हुए कहा।

"पर यहाँ तो दो पत्ती से कम नहीं है।"

इस बार हवा में ठहरा हुआ हाथ थोड़ा ढीला पड़ गया।

"वैसे आया कहाँ से है, धरमपुर तो लगता नहीं है?"

खोखे से निकले इस अटपटे से सवाल पर वह खीज गया "क्या करेगी मेरी जनमपत्री पूछकर?"

"इसलिए पूछ रही हूँ कि घर में नहीं दाने और अम्माँ चली भुनानो जब गाँठ में टके नहीं है, तो जरूरी या गाजूकी आया।" हिकारत से डाँटा उसे खोखे ने।

"हैं क्यों नहीं, तू बोल तो सही।" हवा में लहराते नोट को ताव आ गया।

"तो फिर निकाल निकाल दो पत्ती।"

"पर तू इतने की है तो नहीं। सौका नोट जेब में लौट आया वापस।"

"नहीं हूँ तो क्यों खड़ा है छाती पे.... नाप अपना रास्ता।"

"ठीक है दो पत्ती ही दूँगा, पर यह बता टाईम कितना देगी?"

"जित्ते पैसे, वत्ता टाईम।"

"फिर भी घंटा, दो घंटा।"

"क्यों, दो सौ रूपल्ली में मुझे ब्याह के ले जाने की सलाह है!"

"और सुन, ये घंटे—दो घंटे वाले चोंचले पूरे करना अपनी जोरू के साथ?"

"अच्छा जल्दी बता, सौदा मंजूर है तो ला दे पैसे.......नहीं कोई और देख।" चुपचाप उसी सौ के नोट के साथ एक और नोट निकला तथा लगभग शरमाते हुए दोनों खोखे में प्रवेश कर गए।

'चल, आ जा मेरे पीछे–पीछे!' पैसे हाथ में आते ही बोली वह। इसी बीच पाँच वर्षीय़ बच्ची के पास वह रूकी और पीछे पलटते हुए लगभग आदेश देते हुए बोली, "चल, बीस रुपए दो बबली को।"

अचकचा गया वह।

"जल्दी दे ना" झल्लाते हुए डाँटा उसने।

यह इसी अचकचाहट के कारण था कि जहाँ जेब से बीस रुपए को बाहर आना था, उसकी जगह उंगलियों के बीच फँस पचास का। चपास के इस नोट को बाहर आया देख, जब तक वह निर्णय लेता। उसे झपटते हुए बबली को दे, यह कहते हुए आगे बढ़ गई, "बबली जरा खोखे पर बैठा मैं अभी आयी निपटा कर।"

वे दोनों अभी कुछ ही कदम आगे बढ़े थे कि उनके कानों में एक काँपता हुआ स्वर टकराया, "कौन हेमा!"

"हाँ अम्माँ, मैं हूँ"

अब तक वे दोनों अम्मा के पास पहुँच चुके थे।

"चल, पचास अम्माँ को दे!"

इस बार हाथ ने जेब में जाने से साफ मना कर दिया वहीं ठिठक वह मन ही मन अब तक जेब से निकले नोटों का हिसाब लगाने लगा।

"क्या हुआ, जल्दी कर ना।" हेमा बेहद तल्खी के साथ बोली।

"पर बात तो दो सौ में तय हुई थी।" हिम्मत कर उसने कह दिया।

"मैंने कब कहा पाँच सौ में हुई थी।"

"लेकिन ये बीस और पचास का चक्कर?"

"देख, देने हों तो दे नहीं........"

"बेटा, यह तो सुगन है। देना ही पड़े हैं।" अम्माँ ने स्थिति को संभालते हुए कहा।

"मुझे क्यों दे रहा है, इधर अम्माँ के हाथ पर!"

इधर उसने अम्माँ के हाथ पर रखा और उधर आशीशों की बौछार होने लगी, "जीता रह बेटा..... तेरा जोबन बना रहे.... तू रोज इस गाजूकी में आये.....।"

अम्माँ से आशीष ले वह जैसे ही चलता कि लगा जैसे उसके पैरों तले ज़मीन खिसक गई हो। वही हुआ जिसका डर था। तेजी से उसका दाय जेब पर गया। फिर कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखा। सही सुना था उसने ऐसी जगहों के बारे में। आगे की कल्पना कर वह सिहरता चला गया। पसीने से नहा गया। अब? वापस चला जाए या?

"अब क्या कर रहा है वहाँ खड़ा–खड़ा?"

एकाएक इस परिचित स्वर के कानों में टकराते ही उसकी जान में जान आई। लगा जैसे लुटते–लुटते बच गया। एक पल की भी देरी नहीं की उसने लपक कर उसी कमरे में घुस गया, जहाँ से वह परिचित स्वर सुनाई दिया था।

थोड़ी देर के लिए जैसे सब कुछ ठहर गया।

"बाहर निकलने के बाद उसे पता नहीं चला कि कब वह अंदर घुसा था और कब बाहर निकल आया। एक बार उसके मन में आया भी की वह इस खोखेवाली से बात करे। आखिर धंधे में कुछ ईमानदारी होनी चाहिए। मगर कैसे बात करे? उससे बात करना तो दूर, वह उसकी ओर देख भी नहीं रही है। जैसे वह उसे जानती ही नहीं उसकी इस उपेक्षा पर कसमसाकर रह गया।"[29] कंजर जनजाति मातृसत्तात्मक समाज को नीव डाली है। यहाँ घर की मुखिया माँ होती है। उस समाज में देह व्यवसाय कोई बूरी बात नहीं मानते हैं यह परंपरा उत्तर अधिकार में प्राप्त हुआ। उसे अपनाकर, अगले पीड़ी को विरासत में देते हैं।

कंजर समाज में देह धंधा करनेवाली खिलावड़ी की तबियत खराब हो गई, देह धंधा करने में मुश्किल होता है तो दूसरी खिलावड़ी को रख सकती है। क्योंकि पूराने ग्राहकों को बचाए जा रख सके। अगर पूराने ग्राहकों को नई खिलावड़ी से संबंध हो गया तो उन्हें अलग करना बहुत मुश्किल होता है। यहँ रूक्मणी खिलावड़ी की यौन इन्फैंक्शन होती है इसे दूसरे शब्दों में गन्मौरिया और सिफलिस भी कहते हैं। अगले पल वह सोचने लगती है। तब कैसे चलेगी जीवन? धंधे से अलग करने का साफ–साफ अर्थ यह हुआ कि जिसे नहीं मालूम उसे भी पता चल जाएगा। आज

---

[29] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–77–79

कमला बुआ को पता चलेगा, तो कल पूरी गाजूकी को। कल गाजूकी को पता चलेगा, तो अगले दिन उसके सारे कज्जाओं (ग्राहकों) को और यदि उसके कज्जाओं को पता चल गया जब? बहुत सोचने लगती है। अतः उसे एक बात सूझती है। कंजरों में एक नियम पर्वाजों से हैं। जब किसी कंजरी की यौन में खुजली या इन्फैक्शन होगी तो दूसरी खिलावड़ी को आधे बाँटे में रख सकती है। इसी नियम को स्वीकार कर रंभा को आधे बाँटे रखलेती है। रंभा की दादी अंगूरी कहती है– "कैसे रास्ता भूल गई रूक्मणी? अचानक रूक्मणी को अपने घर आयी देख पूछा अंगूरी ने।"

रास्ता क्या चाची ऐसे ही चली आई।

"ना, ऐसा हो ही ना सके। इस समय किसी खिलावड़ी को अपने ठीक छोड़ता देखा हैरानी सी होती है। वह भी रूक्मणी जैसे खिलावड़ी को देख, जिसके लिए कज्जाओं में होता मची रहती है।"

हाँ यह तो तू ठीक कह रही है चाची......... पर जब तबियत ही खराब हो तो.......

"सब ठीक तो है? कोई महीना–वहीना तो ना चढ़ गया?"

"ऐसी कोई बात ना है चाची।"

"फिर ऐसा क्या हो गया जो तबियत ही बिगड़ गई?"

"चाची, एक जरूरी काम से आई हूँ तेरे पास।"

"चाची".... कहती–कहती रूक गई रूक्मणी।

अपने चारों ओर रूक्मणी को नजर मारते हुए देखा, अंगूरी ने तसल्ली बँधाते हुए कहा, "कोई न है। सब अपने–अपने धंधे में लगी हुई हैं रंभा खोखे पर है और..........।"

"पता ना चाची, तू राजी होगी या ना।"

"पहले तू राजी करे। काम मत बता।"

"रंभा को माँगने आई हूँ।"

"र........रंभा को?"

"हाँ चाची।"

"रुक्मणी, तू तो रंभा को ऐसे माँग रही है जैसे पिछवाड़े पड़ी कोई फालतू चीज में रही है, और मैं पट्ट से उठा के दे दूँगी।"

"सच कह रही हूँ चाची, मैं रंभा को ही माँगने आई हूँ।"

"क्यों, कोई मोटा सामान फँसा है क्या?"

"वो बात नहीं है चाची। आधे बाँटे पर माँगने आई हूँ।"

"देख रुक्मणी, धंधे पानी में कोई लिहाज शरम नहीं। मैं तो दो टूक कहती हूँ कि दे दूँगी आधे बाटे पे, पर एक कौल देना होगा।"

"मुझे मंजूर है पर तू बोत सही।"

कौल यह है कि किसी लीडर—वीडर के रंग न भेजेगी इसे। हाँ, कोई इज्जतदार सेठ मिल जाए तो कोई हरज ना है।

"मंजूर है चाची।"

"मंजूर हो तो ता, क्या हिसाब—किताब रहेगा?"

"हिसाब—किताब क्या, वही रहेगा जो आधे बाँटे का दस्तूर है।"

"मतलब?"

मतलब यह कि सौ में से चालीस बँटाई वाली का और साठ खिलावड़ी का।

चाची, आधे बाँटे का दस्तूर और उसूल से तो हिस्सा बनता है चालीस—साठ यह सही है, पर चूँकि मैं जुबान दे चुकी हूँ इसलिए पैंतीस—पैंसठ से ज्यादा की मेरी ना तो औकात है, न गुंजाइश बाकी तेरी मरजी। तेरा माल, तेरे पास...... मैं चली। इतना कहकर रूक्मणी सचमुच उठकर जाने लगी। "ठीक है रूक्मणी। सौदा मंजूर है। बस जो मैंने कौलकिया है उसका ध्यान रखियो।"[30]

कंजर जनजाति में देह का व्यवसाय करनेवाली 'बुआ' विवाह करके जब भाभी बनना चाहती है तो उसे समाज में उसकी उपेक्षा होती है। स्त्री भाभी बनाम के बीच खिंची रहती है यह लक्ष्मण रेखा जैसे लाँघने का साहस करती है। जब रंभा किसी ट्रक ड्रावर के साथ घर बसाना चाहती है तो उसकी दादी अंगूरी उससे नफरत करती है। अंततः रंभा दादी को चुनौती देकर घर बसा लेती है। यहाँ दादी अंगुरी कहती है। "तो बेटा सुन, दस्तूर हमारा यह है कि अगर मैं अपनी पोती को 'भाभी' बनाती..... भाभी का मतलब समझ रहा है न तू? मैं बताती हूँ, भाभी का मतलब, मैं अलग इसका ब्याह

---

[30] रेत ',भगवानदास मोरवाल—पृ.—98—101

करती तो पता है बेटावला मुझे कितनी रक्म देता. कम से कम दो लाख।" ठीक है, बसा ले तू इसके साथ घर पर एक बात सुनले कि रकम घर पूरे डेढ़ लाख। डेढ़ लाख! ड्राइवर का मुँह खुला का खुला रह गया। तो फ्री का माल है, ले जा ट्रक में बिठाके। 'प...... पर अम्माँ, मेरे कहाँ है इतनी मोटी रकम। घिघिया गया इस बार ड्राइवर। ना है तो हवा खा। छोड़ यह घर–वर बसाने का चक्कर। अम्माँ, ये डेढ़ लाख कहाँ से लाएँगें? फालतू की बात छोड़। कह दे अपने डलेवर से कि डेढ़ लाख है तो ले जाए, ना ही नापे अपना रास्ता।'

"हाँ अम्माँ, मैं दूँगी पूरे डेढ़ लाख। बस, दो महीने रूक जा। हुँ, दो महीने तो वैसे कह रही है जैसे किसी बैंक में कोई हुँड जमा कर रखी है। हाँ अम्माँ, अगर दो महीने में मैंने डेढ़ लाख कमाकर तेरे मुँह पर मार दिया तो नाम बदला लेना मेरा।"[31]

रंभा ने अपनी ही दादी के चारों ओर बनी अभेद्य संबंध की अधिकतम मोखियाँ बंद कर दी। एकाध जो बची उन्हें उसने जान–बूझकर साँस लेने के लिए छोड़ दिया। पोती की दृढ़ता के आगे अंगूरी को न चाहते हुए समर्पण करना पड़ा। यह बात कंजरों के समाज में छोटी सी किंवदंती की तरह फैल गई।

महानगरों की पॉश कॉलोनियों, सिविल लाइनों से उठकर अब वह उन निवार्सित और कलंकित समझी और मानी जानीवाली बस्तियों से भी संवाद कर रहा है जहाँ के लोगों के साथ दमन और अत्याचार आज भी जारी है। बल्कि आजादी के बाद के दिनों की तुलना में घटने के बजाय ये बाते कुछ बढ़ी ही हैं। कमला बुआ अपना दुख को इस प्रकार प्रकट कर रही हैं– "दरोगा जी एक बात कहूं। इस मुलक में हम तो आज भी वैसे ही हैं, जैसे फिरंगियों के जमाने में थे। पहले फिरंगियों और उनके दलाल पट्ठुओं ने हमारा जीना मुहाल कर रखा था, अब इन देशी फिरंगियों ने।"[32] इसी बात को दर्शाते हुए 'मैत्रेयी पुष्पा' अपनी आत्मकथा। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में लिखा है– "पिछले वर्षों से जो होता आ रहा है, वह कबूतर बस्ती का दमन पूर्ण इतिहास है..... कहते हैं इसमें मुगलों से लेकर अंग्रेजों तक का युग समाया हुआ है। आगे वे क्षोभ से

---

[31] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–

[32] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–144

भरकर कहती है, गुलाम भारत में अंग्रेजों के मुकाबले आजाद देश के नागरिक जुल्म ढाने में कम नहीं, कई गुना ज्यादा है।"[33]

मनमोहक पाठक के उपन्यास 'गगन घटा घहरानी' में झारखंड के 'पलामू' क्षेत्र का आदिवासी जीवन का संघर्ष, विवशता सरलता, कुरुपता इस प्रकार दर्शाया है– "जमींदारी प्रथा समाप्त कहां हुई? रूप बदलकर बड़े किसानों और उनके परिवारों में ही तो सिमटी है। सामंती हुकूमत भी तो यहाँ ज्यों की त्यों है। हाकिम और पुलिस का सहारा लेकर बल्कि और भी परवान चढ़ा है।"[34]

उपर्युक्त तीन वक्तव्यों से लगता है कि हाशिए समाज जमींदारों से अत्याचार एवं शोषण के शिकार हो रहा है। आज सत्ता रूप बदल कर राजनेता और पूँजीपतियों में समा गयी है। पितृसत्तात्मक समाज ने पुरुष वर्चस्व से प्रभावित होकर भयानक षड्यंत्र के तहत स्त्रियों का शोषण कर रहा हैं।

जाहिर है कि सदियों से ही स्त्री को अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए आत्म सघर्ष करना पड़ा है। जिन स्त्रियों में आत्म संघर्ष का साहस नहीं होता वे मृत्यु का वरण कर लेती है। किंतु जीवन के दुखों को चुनौती समझकर सामना करनेवाली स्त्रियों समाज से लड़ने का साहस रखती हैं तथा आत्म संघर्ष करके जीवनयापन करती हैं। 'रेत' की मुखिया कमला बुआ देह का धंधा करने वाली खिलावड़ी की तकलीफों एवं टकराव को दरोगा जी से कहती है। अतः कमला सदन एक चमत्कार की बात कहती है। 'दरोगा जी के माध्यम से वह सरकार से आग्रह करती है कि देह धंधे को भी एक व्यवसाय मानकर कानून दर्ज देना चाहिए। क्योंकि स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार, बलात्कारों से तो वे कम से कम बच सकती हैं। कमला बुआ कहती हैं– "दरोगा जी एक बात कहूँ। इस मुलक में हम तो आज भी वैसे ही हैं, जैसे फिरंगियों के जमाने में थे। पहले फिरंगी और उनके दलाल पिट्ठुओं ने हमारा जीना मुहाल कर रक्खा था, अब इन देसी फिरंगियों ने।'

---

[33] गुड़ियां भीतर गुड़िया–मैत्रेयी पृष्पा, पृ.–

[34] गगन घटा घहरानी–मनमोहन पाठक, पृ.–288

"ये कमला ठीक नहीं होगा जो हमें फिरंगी–विरंगी कहा।" सरपंच के जबड़े की मांस–पेशियाँ ऐंठने लगीं।

'   क्यों, लग गई तन–बदन में आग। मैंने तो फिरंगी ही कहा है। पूछो हम कंजरों से कि हमने अपने ही मुलक में कैसे–कैसे जुलम सहे हैं।' इसके बाद कमला खाकी वर्दी की ओर पलटी, "दरोगा जी जैसे ये इज्जतदार अपनी मेहनत बेचते हैं न, वैसे ही हम अपनी देह बेचते हैं। हमारे लिए तो हमारी देह ही हमारी मेहनत है। हमारे लिए तो यह दूसरे कामों की तरह आम काम है।"

"देखों जनाब, धंधे को तो ये औरत मेहनत बता रही है।"

"क्यों, बिना मेहनत हो जाता है यह काम! जके पूछ अपनी जोरू से कित्ती मेहनत लगती है इस काम में। वाह, तुम्हारी मेहनत, मेहनत और हमारी मेहनत धंधा। तुम कहलाओ कमेरे और हम कहलाएँ रामजनी यह कहाँ का न्याय हुआ दरोगा जी।"

"और दरोगा जी सुनो, हमें चाहे कोर्ट में जाना पड़ जाए, या कचहरी में....... हम इस जगह से हिलनेवाले नहीं। रही बात कायदे–कानून की, सो इत्ता आपको भी पता होगा कि ऐसी जगह पर, सरकार ने एक कानून बनाया है। अगर पता है तो बता दो इन्ने, जिन्हें हमारे वजह से अपनी बहू–बेटियों पर खराब असर पड़ता दिखाई दे रहा है।"

"सरपंच ठीक कह रही है जनाब।"

"इसमें उकड़ने की बात नहीं है सरपंच। सरकार ने ऐसा कानून बनाया है हाल में, जिसके तहत ऐसी जगह जाने पर सजावट थे नहीं जानेवाले मर्द होंगे।"

"पर जनाब, जब ये यहाँ रहेंगी ही नहीं तो......."

"यह खूब कही सरपंच की चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी, अंटा मेरे बाप का।" भीड़ में एक बार फिर फूटा हँसी का फब्बारा।

"दरोगा जी, अपने ऊपर कंट्रोल रखने के बजाय इनका सारा जोर हम कंजरों को भगाने पर है। आज ये हम इस तिबारे से भगाने की बात कर रहे हैं, कल गाजूकी से भगाने की करेंगे........ परसों लावा का बास करेंगे, तो नरसो कल साड़ा से।"

"हम भी तो यही चाहती हूँ दरोगा जी कि हमें खिलावड़ी नहीं, एक मजूर की तरह मान–सम्मान दिया जाए। सच कहूँ दरोगा जी, मेरी तो सरकार से अरज है कि

वह इस धंधे को कानूनी दर्जा दे दे। कम से कम इन मरे इज्जतदारों की बहू–बेटियों तो बची रहेंगी बुरे असर से।"[35]

अंततः कमला बुआ अपनी ही नहीं सारी खिलावड़ियाँ की पीड़ा, दुख–दर्द को सामने रखते हुए कहती हैं दरोगा जी सरकार से हमारा आग्रह है कि देहव्यवसाय को कानूनी दर्जा दे। क्योंकि कम से कम स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार एवं बलात्कारों से बच सके।

नलिनी जमीला की आत्मकथा 'एक सेक्स वर्कर की आत्मकथा' में जिक्र है कि कैसे वह 'ज्वालामुखी' नामक एक सेक्स संस्था से जुड़ जाती है। इस संस्था से जुड़ने के बाद वह सेक्स वर्करों को हक की लड़ाई लड़ने लगती है। वह अपनी सहेली को समझाती है– "यही तो अड़चन है। अगर तुम सोचते हो कि यह एक जुर्म है तो तुम्हें सज़ा जरूर मिलेगी। अगर तुम सोचते हो कि तुमने डाका डाला है तो सबसे पहले आस–पास वाले तुम पर झपटेंगे, फिर पुलिस और अदालत तुम्हें सजा देगी। हम गुनहगार क्यों है? किस नजरिए से? अगर सेक्स कोई गुनाह है तो वो बी एक गुनहगार नहीं है?"[36] नलिनी ने अपनी संस्था के साथ मिलकर पुलिस की यातनाओं के खिलाफ अपनी आवाज उठाई।

एक तो यही कि 'सेक्स बिजनेस' (खिलावड़ीपन) को कानूनी वैधता मिले या ना मिले? वह भी तब, जब इस व्यवसाय में लगी हुई जातियाँ इसे गलीज और गंदा तथा मजबूरी का सौदा न समझकर उदरपोषण का महज एक सामान्य व्यवसाय मानती हैं। अन्य आम व्यवसाय की तरह, उनमें इसे लेकर कोई शर्म या हीनताबोध नहीं है। उनका मानना है कि अगर इसे कानूनी बैधता मिल जाएगी तो कम से कम वे पुलिस उत्पीड़न और 'भद्रजनों' की नाक सिकोड़ी वृत्ति से बचकर सुविधापूर्वक सामान्य जीवन जी पाएंगी।

'रेत' की नायिका रूक्मिणी जो बुआ बनकर एक वेश्या का जीवन जीते हुए उच्च वर्ग व तथाकथित उच्च जातियों द्वारा किए गए शोषण का बदला लेना चाहती है

---

[35] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–144–146

[36] एक सेक्स वर्कर की आत्मकथा–नलिनी जमीला पृ.–64 (यह आत्मकथा मौलिक रूप से मलयालम के हैं हिन्दी में अनुवाद भोला यामिनी ने की)

और जीवन में और भी बहुत कुछ प्राप्त कर लेना चाहती है। उसका सहयोग बनता है उसका एक पारिवारिक मित्र घनश्याम कृष्ण उर्फ वैद्यजी, रूक्मिणी के प्रति भावात्मक लगाव रखती है। तभी तो एक दिन अवसाद भरे स्वर में जब रूक्मिणी कहती है– "वैद्यजी, यह रूक्मिणी तो ऐसी रेत है जिसे जैसी चाहे हवा अपने साथ उड़ा ले जाए.... जैस चाहे पानी बहा ले जाए और तो जिसके जी में आए अपनी मुट्ठी में कैद कर ले जाए।"

"क्या है इसका अपना, कुछ भी तो नहीं। भला, रेत का भी अपना कोई वजूद होता है?"[37]

वैद्यजी कहता है– "ऐसी बात नहीं है रूक्मिणी। यह तो अपना–अपना सोचने का ढंग है। मैं कुछ कहूँगा तो तुझे लगेगा मैं कोई उपदेश दे रहा हूँ, पर असलियत यह है कि बिना रेत वया तो हवा,, क्या पानी। इनका भी क्या है अपना। रेत बिना कैसा बवंडर, कैसे आंधी और तू कहती है कि रेत का भी भला अपना कोई वजूद होता है।"

तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो न संतो भाभी होकर संतुष्ट है, न रूक्मणी खिलावड़ी (वेश्या) होकर। असंतोष की यह ठंडी आग भीतर ही भीतर अपनी–अपनी निस्सारता को लेकर धधक रही है। उपन्यास इसी आग को विद्रोह के दावानल में बदलने की कहानी कहता है।

मैत्रेयी पुष्पा के ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखे उपन्यास 'चाक' की नायिका सारंग किशोरी बालिका के रूप में 'सत्यार्थ प्रकाश' के बीच रखकर ऋतुसंहार किताब छिपाकर पढ़ती है और बताती है। "कोई विलासी नहीं शास्त्री जी, 40 वर्ष की अवस्था के, गोरे रंग और लंबे कद के मुलायम मुख वाले शास्त्री जी की छवि बुरी तरह तंग किए थी, खादी के वस्त्र पहने हुए काश महीन वस्त्र पहने होते, मैं भोग की इच्छा रखती हुई भी शास्त्री जी की बाहों में फिसल रही थी।"[38]

'हंस' पत्रिका के संपादकीय में राजेंद्र यादव कहते हैं– "लेखन या बौद्धिक जगत में आज की औरतें जो सफलताएँ अर्जित कह रही हैं उनके पीछे उनकी देह है।

[37] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–111
[38] चाक– मैत्रेयी पुष्पा–पृ.–89–90

वरना योग्यता के नाम पर उनके पास रखा ही क्या है।"[39] अपने विमर्श की पुष्टि के लिए यादव जी रमणिका गुप्ता और कृष्ण अग्नीहोत्री को उद्घृत करते हैं। इस वाक्य का अर्थ तो ये है कि योग्यतम माने जाने वाली लेखिका, निकृष्टतम लेखक की तुलना में भी निकृष्ट है, क्योंकि योग्यता के नाम पर उसकी देह मात्र है।

रेत में सावित्री मल्होत्रा रूक्मिणी से कहती है कि ''रूक्मिणी कुछ लोग इस देह का इस्तेमाल सिर्फ जिंदा रहने या फिर पेट भरने के लिए करते है। वैसे भी इस थोबड़े और देह के सिवा तेरे पास क्या है? क्या है तेरे पास खोने को ? खोता उसका है जिसके पास खोने को कुछ हो।''

हमारी सबसे बड़ी अमानत हमारी यह देह ही तो है। सोच हमारे पास यह नहीं होतीं, तो क्या है हमारे पास। अपनी देह की तू खुद मुख्तार है..........इससे आगे मैं क्या कह सकती हूँ।''[40]

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'चाक' में रंजीत की पत्नी अपनी प्रेमी मास्टर श्रीधर के साथ प्रणय आनन्द में निमग्न है– ''चाची, तुमने कैलासी सिंह को जो संजीवनी बूटी चटा दी थी, मैं देना चाह रहती श्रीधर को और सोच रही थी– श्रीधर, अगर तुम्हारी आँखे अस देह को देखकर आनंद पाती हैं तो जी भरकर देखों मुझे, मेरी सुंदरता सार्थक हुई, भोग करने से तुम्हारे प्राण तृप्त हों आवों रात बाकी हैं अभी''

मैंने लाज मानी, न व्यभिचार, श्रीधर को आंनद सरोवर में खींच लिया, मैं क्या करती चाची श्रीधर को देने के लिए मेरे पास था ही क्या? हरी–भरी देह जो एक दिन सूख जायेगी।''[41]

उपर्युक्त व वक्तव्यों से पता चलता है औरतों के पास उनकी देह है वरना योग्यता के नाम पर उनके पास रखा ही क्या है ? इसके जारिए क्या ऐसी तमाम स्त्रियों को यह संदेश देना चाहती है कि उनके पास अपना भाग्य पलटन के लिए इसके अलावा कोई और दूसरा विकल्प या उपाय नहीं है? पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को भोग वस्तु

---

[39] एक और स्त्री विमर्श–राजेन्द्र यादव–हंस–2008 जून

[40] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–199

[41] चाक –मैत्रेयी पुष्पा–पु.329

बनाया। आज महिलाएँ वस्तु से व्यक्ति बन गई है। खुले दिमाग से सोच विचार कर अन्य मैदानों में पुरूष के समान लम्बी भागदौड़ में वह भी शामिल है।

कंजर जनजाति की अविवाहित लड़कियाँ देह व्यवसाय करती हैं। राजनेता मुरली, रूक्मिणी को गेस्ट हॉउस में आमंत्रित करता है। रूक्मिणी आती है। उस दिन रूक्मिणी का मन नहीं था पर मुरली के मन में कामवासना उत्पन्न होती है। वह रूक्मिणी को बहुत तंग करता है। रूक्मिणी बहुत रोकती है, मना भी करती। मुरली नहीं मानता। अतः रूक्मिणी वही टेबल पर रखा हुआ शराब का बोतल तोड़कर मुरली के पेट में घुसा देती है और मुरली बेहोश होकर गिर जाता है।

''मगर रूक्मिणी ने भी जैसे प्रतिज्ञा लेली कि अपने इच्छा के विरूद्ध हो रही इस कपट जंग में वह हार नहीं मानेगी। मुरली के शिकंजों से मुक्त होने के प्रयास में उसे पहली बार अहसास हुआ कि हिंस्त्र आदमखोर जानवर और आदमी में कितनी समानता होती है।

इस बीच पता नहीं रूक्मिणी का हाथ कब मेज के नीचे सरक कर वहाँ रखी बोतल तक पहुँचा? कब बोतल उसके हाथ में आई और कब वह टूटकर मुरली के पेट में समागई।''[42]

उपर्युक्त प्रसंग से यह पता चलता है कि स्त्री अब अबला नहीं रही। अपनी स्वाधीनता की लड़ाई में लड़ने का मन वह प्रत्येक स्तर पर बना चुकी है। अतः पूर्व समय में समाज के हर संबंध में दृढ़ता थी, परंतु बदलती परिस्थितियों के साथ सामाजिक नियमों में शिथिलता आती गई। परिणाम स्वरूप व्यक्ति के आपसी संबंधों में भी परिवर्तन आ गया। जीवन व्यवस्था के अनेक स्तरों में उसका मोह भंग हुआ। स्त्री–पुरूष संबंध भी इससे बचे नहीं रहे। समय के साथ इस संबंध में भी परिवर्तन आए। नवीन वैज्ञानिक जीवन–दृष्टि ने मानवीय संबंधों को यथार्थ के धरातल प्रधान किया। आज स्त्री–पुरूष की चेरी बनकर नहीं वरन् सहचरी बनकर जीना पसंद करती है। स्त्री–पुरूष संबंधों में समानाधिकार की माँग से पारिवारिक तथा सामाजिक मूल्यों में

---

[42] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–195

परिवर्तन आया है। अब पुरूष उसकी आर्थिक आवश्यकता कम मानसिक आवश्यकता अधिक है। वह पुरूष में स्वामी कम साथी ज्यादा चाहती है।

रूक्मिणी जैसी अत्यंत संभावनापूर्ण पात्र के चरित्र का सृजन वैसे तेजस्वी और क्रांतिकारी चरित्र में बिल्कुल भी नहीं गया है जैसा कि उसका संवेदनात्मक उद्देश्य रहा होगा। देह को आधार बनाकर भाग्य बदलने के फैसले के साथ ही रूक्मिणी की आँखों में अपने बेटे गुड्डू का चेहरा तैर जाता है।

लेखक कहता है– ''क्या कर रहा होगा इस समय गुड्डू? शायद कमला सदन के बाहर खड़ा समझा रहा होगा कज्जाओं को कि अभी आती ही होगी उसकी माँ। जब सदन में होती है तब गुड्डू की भूमिका बेटे की नहीं, उस परिपक्व संदेहवाहक की होती है, जिसकी अनुभवी आँखे कमला सदन की ओर आते अजनबी को देखते ही पहचान लेती हैं तथा जिसे देखते ही वही अपनी पतली–पतली टाँगों पर दौड़ता हुआ माँ को जाकर सूचना देता है, 'कज्जा आईरियों माँ!''[43]

यही रूक्मिणी चरित्र का और साथ ही इस उपन्यास का भी सबसे जबर्दस्त और निर्णायक मोड़ है। उपन्यास का सबसे संभावनापूर्ण और निर्णायक चरित्र यह गुड्डू ही है जो उपन्यास में अपनी बहुत हल्की सी उपस्थिति दिखाकर भी अमिट प्रभाव छोड़ता है। इस नाजुक मोड़ से ही रूक्मिणी के सारे चिंतन और कर्म के केंद्र में गुड्डू ही मौजूद रहता है, भले ही उसकी अवचेतना में और अत्यंत अपराध रूप से शामिल हुआ है। किन्तु उपन्यास के केंद्र में गुड्डू का ही है।

3.3 पुरूष पात्र

कंजर जनजाति पूर्ण रूप से मातृसत्तात्मक समाज को नीवं डालती है। कंजर जनजाति के पुरूष कोई काम नहीं करते हैं। वे ज्यादा अपराध भरे जरायम पेशा को अपनाते हैं। जरायम पेशा में अवैध शराब, बनाना, नकब चोरी, हत्या–मर्डर आदि अपराध वृत्ति में शामिल हैं। कंजर जनजाति के पुरूषों का शराब बनाने के साथ–साथ सेवन

---

[43] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–201

करने का शौक भी होता है। कंजर दिन भर नशे में रहते है जब कमला बुआ कहती– ''अंगूरी, छोटी से वह कि हाथ थोड़ा तंग रक्खे। देखा जा रही है मरा पीके पूरे दिन कैसा पड़ा रहता है। मरे को आगे की सुध ना पीछे की।''[44] कंजर जनजाति के पुरूष कभी थाने में, कभी कोर्ट में जाते रहतें हैं। इनका कोई निश्चित स्थान नहीं होता।

रेत में दो ही पुरूष पात्र हैं। एक सुशीला का बेटा मंगल, दूसरा घनश्याम कृष्ण उर्फ वैद्यजी। वैद्यजी गैर कंजर है। घनश्याम कृष्ण उर्फ वैद्यजी गाजूकी में दवाखाना चलाता है। इसीलिए दूसरे लोग इन्हें वैद्यजी कहते हैं। बीमारी का इलाज बहुत मजेदार होता है। इलाज में सलाह ज्यादा दवा कम। उसकी हैसियत है सलाह देना। गाजूकी में वैद्यजी का बहुत आदर करते है। कमला बुआ वैद्यजी की सलाह लेकर ही आगे कार्रवाई करती है। जब प्रकोष्ठ का गठन करते समय कलमा बुआ वैद्यजी से सलाह पूछती है– "देख वैद्यजी, हमें तो इन झंझटों का पता है नहीं। अब तू आ ही गया है तो हमें सलाह दो, हम क्या करे।"[45] आगे वैद्यजी कहता है– "वंदना रूक्मिणी की योजना मुझे नियत में कोई खोट दिखाई नहीं देती। वह तो तुम सबको इस नरक से निकल एक इज्जत भरी जिंदगी देना चाहती है, पर यह नाम मेरी समझ से परे हैं।"[46]

कमला बुआ के परिवार में सुशीला, माया वंदना, पूनम, ये कोई प्रकोष्ठ के प्रति उपेक्षित भावना से भरे हुए हैं। वैद्यजी ही कहने पर वे 'जनजाति महिला उद्धार सभा' के गठन में सक्रिय होते हैं। वैद्यजी कहते हैं– "मेरे हिसाब से बुआ गाजूकी से अच्छा दूसरी जगह और कोई नहीं है। हाँ तिबारे पर दफ्तर बनाया जा सकता है। सावित्री जी वही से सभी का काम देख सकती है। टेलीफोन भी आसानी से लग जाएगा।"[47]

'रेत' में वैद्यजी आरंभ से लेकर अंत तक उपस्थित है। कथा नायक के बारे में कहा जाए तो वैद्यजी ही है। इनके विचार सही दिशा को लेकर, मंजिल तक पहुँचाते हैं। इसीलिए कमला बुआ के घर में कोई कार्रवाई वैद्यजी के बिना नहीं चलती है। हर

---

[44] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–69
[45] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–219
[46] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–219–220
[47] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–223

कार्रवाई में वे शामिल होते हैं। कथा आरंभ में रूक्मिणी और वैद्यजी दोनों के बीच प्रेम भावना उत्पन्न होती है। ज्यों–ज्यों कथा आगे बढ़ती यह प्रेम भावना गायब हो जाती है। वैद्यजी 'जनजाति महिला उद्धार सभा' उद्घाटन से लेकर विधान सभा चुनाव जीतकर राज्य जनजाति कल्याण उपमंत्री बनने तक रूक्मिणी के साथ रहते हैं। अतः एक प्रकार से कंजर खिलावड़ी को देहधंधे से मुक्ति दिलाने में वैद्यजी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

3.4 राजनीतिक चेतना

राज्य की प्रचुर शक्ति जनता में निहित है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए राजनीति का ज्ञान आवश्यक हो गया है, ताकि वह समाज में अपनी स्थिति को समझ सके और अपने अधिकारों और कर्तव्यों का उचित निर्वाह कर सके।

व्यक्ति, समाज, साहित्य और राजनीति का संबंध परस्पर अटूट होता है। विद्वानों के अनुसार– "मानव एक सामाजिक प्राणी होने के साथ–साथ और राजनीति प्राणी भी है।"[48] यदि समाज मानव जीवन को प्रभावित करता है तो राजनीति भी मानव जीवन को प्रभावित करती है। अतः दोनों की संगति में ही जीवन को गति मिलती है। मनुष्य का जीवन विविध रूपों– "धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला साहित्य और राजनीति आदि परस्पर इतने सुगंधित है कि अलग–अलग नहीं किया जा सकता।"[49]

"साहित्य की प्रत्येक रचना में किसी न किसी रूप में राजनीति को अणु अवश्य विद्यमान होते हैं। उपन्यासकार अथवा साहित्यकार अपने द्वैत उत्तर दायित्व से बंधा होता है। उसके लिए अतीत और वर्तमान दोनों का समान महत्व है। वह युगीन जीवंत तत्वों को अपनी कृति में ग्रहण करता है तथा इन्हीं भावों को उपन्यास के माध्यम से प्रकट करता है।"[50]

---

[48] हिन्दी उपन्यास और स्वातंत्र संघर्ष के विविध आयाम– डॉ. डी. डी. तिवारी–पृ.68
[49] हिन्दी उपन्यास और स्वातंत्र संघर्ष के विविध आयाम– डॉ. डी. डी. तिवारी–पृ.68
[50] हिन्दी उपन्यास और स्वातंत्र संघर्ष के विविध आयाम– डॉ. डी. डी. तिवारी–पृ.69

अतः राजनीति प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में समाज को प्रभावित करती है। भगवानदास मोरवाल ने समाज पर पड़ने वाले इन राजनीतिक प्रभावों को अनदेखा न करके अपने उपन्यासों में इसका सफल चित्रण किया है। भारत का आदिवासी जनजीवन जिस राजनीतिक षडयंत्र का शिकार है। उसका खुली चिट्ठा प्रस्तुत करने में उन्होंने कोई संकोच नहीं किया है।

'रेत' उपन्यास में जब पार्टी में 'जनजाति महिला प्रकोष्ठ' बनाने का सुझाव दिया जाता है तो पार्टी उसको स्वीकार करती है और उसका गठन या स्थापना का दायित्व अनुभवी राजनेता मुरली को सौपा जाता है। इन कामों के लिए जनजातीय महिलाओं की आवश्यकता होती है।

इस सिलसिले में रूक्मिणी को 'क्षेत्रीय जनजातीय महिला उद्धार सभा' के प्रतिनिधित्व के रूप में चुना जाता है। मुरली कहता है– "यह काम नहीं रूक्मिणी। दरअसल मैंने पार्टी को 'जनजाति महिला प्रकोष्ठ' बनाने का सुझाव दिया था। जिसे पार्टी ने मान लिया है और गठन की जिम्मेदारी मेरे ऊपर डाल दी है।"

'यानी जो बोले, सो कुंडा खोले। सावित्री ने हँसते हुए कहा।'

"अब दिक्कत यह है कि मुझे कुछ जनजाति महिलाओं की जरूरत पड़ेगी। इसलिए सोचा की इस काम के लिए तुझसे अच्छी महिला और कौन हो सकती है। जिसके हाथों में बागडोर सौंपी जाए। मैंने तो प्रदेश अध्यक्ष को तुम्हारा नाम भी रेकमंड कर दिया है।"[51] अंततः पार्टी की ओर जनजातीय महिला प्रकोष्ठ गठित होता है और जनजाति महिलाओं की ओर से रूक्मिणी क्षेत्रीय जनजाति महिला प्रकोष्ठ की अध्यक्ष बना दी जाती है।

संजीव के उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' के कथ्य के विन्यस्त 'थारू' समाज के काली बिसराम व मलारी जैसों की नियति भारतीय समाज का जो अंतर्पाठ तैयार करती है, उसमें यह प्रश्न उचित ही है कि– "आखिर इन 'थारू' में अपने शोषण के विरूद्ध कोई आक्रोश क्यों नहीं उपजता? अपना कोई नायक क्यों नहीं खड़ा कर

---

[51] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–174–175

पाई यह जाति?........ अगर नारियाँ ही पुरुषों से जीवित है तो नायिका ही खड़ी होती है कोई....... ।"[52]

राजनीति ही एक मात्र ऐसा मैदान है जिसमें जीवन के सारे गुण शामिल है। इस क्षेत्र में एक सामान्य इनसान के लिए स्थान नहीं है, क्योंकि राजनीति स्वार्थ, कपट, छल आदि राजनीति पेचीदीगियों से भरी हुआ है। 'रेत' की नायिका इन्हीं चक्करदार सीढ़ियों से 'राज्य युवा जनजाति महिला प्रकोष्ठ' का अधिकार हासिल करती है।

लेखक कहता है– "मगर जैसे ही कुछ दिनों बाद समाचार पत्रों के माध्यम से यह समाचार आया कि रूक्मिणी के हाथों में पार्टी ने 'राज्य युवा जनजाति महिला प्रकोष्ठ' की कामना सौंप दी है। उस दिन अनेक कर्मठ महिला कार्यकर्ताओं ने मूर्छित हो चारपाई पकड़ ली। सावित्री बहन यानी सावित्री मल्होत्रा की शिराओं में तो रक्त–स जम गया। इस समाचार को सुनकर।"[53] सावित्री मल्होत्रा उस समय मुरली भाई साब को इस प्रकार बताती है। "है, लो! हाँ, भाई साब....... आपने पड़ी आज की खबर?........ यह क्या भाई साब, उन्हें पार्टी के सदस्यता लिए जुम्मा–जुम्मा आठ दिन नहीं हुआ है उन्हें पुरस्कृत किया जा रहा है, और जो पार्टी के लिए मरे जा रहे हैं उन्हें कोई पूछ नहीं रहा है।"[54] यहाँ राजनीति में होने वाली सच्चाई को दर्शाया गया है। राजनेता अपने स्वार्थ, कपट, छल से उनके उम्मीदवारों को नियुक्त करते हैं। जो चौबीस घंटे पार्टी के कार्यों में काम करता है उसे कुछ नहीं मिलता। इस प्रकार सावित्री पछताते हुए मुरली बाबू को अपना दुख बताती है।

मुरली गेस्ट हॉउस आता है। 'जनजाति महिला उद्धार सभा' को गठन कर रूक्मिणी को अध्यक्ष बना दी जाती है। एक दिन रूक्मिणी का मन नहीं था और मुरली को भोग की लालसा पैदा होती है। वह रूक्मिणी को बहुत तंग करता है। रूक्मिणी बहुत मना करती, रोकती, वह नहीं मानता। रूक्मिणी वहीं पड़ी बोतल को तोड़कर मुरली के पेट में घुसा देती है और अस्पताल जाकर मुरली से माफी भी मांगती है। यह घटना रूक्मिणी के जीवन का रास्ता ही बदल देती है। इस पर उसके मन

---

[52] जंगल जहाँ शुरू होता है– संजीव– पृ.–280
[53] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–211
[54] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–211

में एक अलग तरह का बेचैनी छा जाती है। वह अगले दिन अखबार में अश्लील तस्वीर छपवा देती है। अंततः मुरली को विधान सभा के चुनावों में नामांकित करने से मना करती है।

लेखक कहता है– अकेली अपने कमरे में सामने पार्टी अध्यक्ष की टाँगी तस्वीर को देर तक एकटक निहारती रही रूक्मिणी। एक बार तो कुछ पलों के लिए उसे लगा जैसे फ्रेम में अध्यक्ष की नहीं, उसकी तस्वीर जुड़ी हुई है; तो दूसरे पल लगा अध्यक्ष के बगल में उतनी ही बड़ी, उसकी भी तस्वीर लगी हुई है। अपने आप ही मुस्कराकर रह गई रूक्मिणी अपनी ना समझी भरी कल्पना पर थी।

"रूक्मिणी ने बेहद चौकसी बरतते हुए हाथ पेटीकोट में डाला और इससे पहले कि ना–मुराद चींचा किसी दूसरी हरकत के बारे में सोचता, वह अंगूठे और तर्जनी के पोरों की गिरफ्तर मे था। उसे अंधेरे से रोशनी में लाया गया। दोनों पोरो के बीच कसमसाते चीटें को देख रह–रहकर सोचती है रूक्मिणी को यदि ऐसे ही रिहा कर दिया गया, तो भविष्य में फिर से उसकी जाँघों तक पहुँचने की जुरअत कर सकता है। इसलिए जरूरी है इसकी रस जुरअत को खत्म करना और उसके लिए जरूरी है उसे सजा देना–ऐसी सजा कि भविष्य का कोई टंटा ही नहीं रहे। यही सोचते हुए रूक्मिणी के मुस्तैद जल्लाद पारों ने उसके इस दुस्साहस के लिए सजा मुकर्रर कर दी यानी कुछ क्षणों तक फर्श पर तड़पता चींटा आखिरकार हमेशा के लिए अपने आपसे रिहा हो गया।"[55]

नतीज यह होता है कि रूक्मिणी भी राजनीति करना सीख जाती है और वह मुरली को उन्हीं से सीखी चालों से 'मात' देकर हरा देती है। विधान सभा के चुनाव में मुरली के स्थान पर रूक्मिणी का नामांकन होता है। रूक्मिणी अपने ढंग से बदला लेती है और सभी को परास्त करके चुनाव लड़कर प्रदेश की राजनीति में उपमंत्री पद भी पा लेती है।

राजनीति एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें व्यक्तित्व (चरित्र) का ज्यादा महत्व है। धन की कमी हो तो उपार्जन कर सकते हैं, हत्या से भी आदमी बच सकता है। राजनीति

[55] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–217

में एक मात्र बड़ी चीज होती है सदाचार भरा व्यक्तित्व। अगर वह है तो सब कुछ है वह नहीं तो कुछ नहीं है। मुरली दुख में बाईजी सावित्री से कहता है– "चलो, अब जब सब खत्म हो गया, तब उस पर क्या रोना......" कहते–कहते मुरली फफफकर रो पड़ा सावित्री तेजी से लपकी मुरली की तरफ, "नाई बाई साब, क्या खत्म हुआ है, अभी....... इतना जीवन है।" कहते–कहते सावित्री का गला भी भर गया। "सही कह रही है तू सावित्री लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि धन की भरपाई हो सकती है...... हत्या–मर्डर में भी आदमी बच सकता है, किंतु चरित्र ही एक मात्र ऐसी चीज है कि अगर वह है तो सब कुछ है। वह नही है तो कुछ भी नहीं है।"[56]

मुरली आगे पछताते हुए राजनीति की हकीकत को बताते हुए कहता है यहां सब संभव है क्योंकि यह स्वार्थ, कपट, छल, एवं भ्रष्टाचार आदि चीजों से भरा हुआ है। राजनीति में किसी को आंख मूँदकर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि कब जानपर जोखिम बन आए पता ही नहीं चलता। मुरली कहता है कि– "राजनीति में सब संभव है। इसीलिए अपनी छाया पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए राजनीति में....... और एक मैं हूँ जिसने जो मिला पर भरोसा कर लिया।"[57]

अंततः मुरली अपनी राजनीतिक सत्ता को याद करते हुए निरूत्साहित हो जाता है। उसने रूक्मिणी बदनामी के डर से आगे कोई कार्य नहीं करता है।

सदियों से ही स्त्री अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए आत्म संघर्ष करती आई है। जिन स्त्रियों में आत्म संघर्ष का साहस नहीं होता है वे मृत्यु का वरण कर लेती है। किंतु जीवन के दुखों को चुनौती समझकर सामना करनेवाली स्त्रियाँ समाज से लड़ने का साहस रखती हैं तथा आत्म संघर्ष करके जीवनयापन करती हैं। यहाँ रूक्मिणी अपना संघर्ष इस प्रकार व्यक्त कर रही हैं– "मैं ही जानती हूँ वैद्यजी कि मैंने कितने भोले सहे हैं, कितनी जिल्लाते झेली हैं। मैं कैसे भूल सकती हूँ उस दिन को जब इसी मुरली बाबू–सा के लिए उलटा मुझे ही उसके पाँवों पर रख माफी

[56] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–280–281
[57] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–280

मांगनी पड़ी थी।"[58] रूक्मिणी अपनी देह का ही इस्तेमाल करते हुए और देह की रणनीति के मार्फत अपनी संभावनाएं सुनिश्चित करती है।

मुरली को माफी मांगकर जाल में फँसा देती है। अंतः विधानसभा चुनाव में उसका नामांकन होता है और वह सत्ता भी हासिल करती है।

रूक्मिणी कहती है– "अब जाकर पता चला है कि ताकत चाहे दौलत की हो या रूप और देह की, वह कितनी बड़ी होती है। अगर इनमें से एक भी आपके पास है तो समझो आपसे बड़ा ताकतवर कोई नहीं है....... और अगर सारी है तो कहना ही क्या............ मेरे पास आज तीनों है।"[59]

रूक्मिणी यह बात एम.एल.ए. का चुनाव जीतने के बाद राज्य की अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण उपमंत्री बनने के बाद अपने सखा घनश्याम 'कृष्ण' वैद्यजी से कहती है। अपनी देह के बल पर यह सब हासिल करने का गुरूमंत्र उसे भगवा पार्टी की राजनीति कार्यकर्ता और समाज सेविका सावित्री मल्होत्रा देती है। जो उससे कहती है कि अपनी देह की तू खुदमुख्तार है और इसी से अपना भाग्य पलट सकती है।

मानव सभ्यता और सांस्कृतिक विकास का इतिहास, राजनीति का ही इतिहास है। ज्यों–ज्यों मानव सभ्यता का उत्थान हुआ, त्यों–त्यों राजनीतिक मान्यताएँ भी बदली हैं, विकसित हुई है। अतः मानव के विकास का एक उपकरण मात्र राजनीति है। राजनीति एक व्यवस्था है। उसकी जीवन के लिए अनिवार्य और महत्वपूर्ण भूमिका है जो सभी राष्ट्रीय संपदाओं की व्यवस्था से जुड़ी हुई है। समकालीन संदर्भ में व्यवस्था को कई रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इस संबंध में मृदुला गर्ग लिखती है– "व्यवस्था से हमारा तात्पर्य सत्तारूढ़ और संस्थागत तंत्र से है जो राजतंत्र, अर्थतंत्र, सामाजिक व सांस्कृतिक विधान के अनेक अवयव अपने भीतर समेटे रहता है। इन

---

[58] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–322
[59] रेत ',भगवानदास मोरवाल–पृ.–323

अवयवों में राजनीति दल, नौकरशाही, शिक्षा संस्थान व्यापार व विज्ञापन तंत्र, साहित्यिक व कलागत परंपरा सब आ जाते हैं।"[60]

रूक्मिणी जब मंत्रीपद की शपथ ले रही होती है और लोगों को यह पता चलता है कि यह अमुक तबके से है तो उनके दंभ, उपेक्षा, तिरस्कार संदेह की कीच में लिपटे 'रह–रह कर उछलते' एक के बाद एक वाक्य के पीछे ने केवल यह है कि "इधर महामहिम राज्यपाल द्वारा पढ़ी गई शपथ की प्रथम पंक्ति के पीछे–पीछे रूक्मिणी द्वारा यह पंक्ति पढ़ी गई कि– मैं, रूक्मिणी कंजर, सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करती हूँ..........। और उधर सामने उपस्थित भद्रलोक में बेचैने व्याप गई। फुसफुसाहटों का बाजार गरम हो गया।"

क्या रूक्मिणी कंजर?

कंजर मायने, चोर–डकैत

जिनकी औरते धंधा करते हैं, वही?

'फिर तो यह भी राम....राम....राम।'

'देखों तो कैसी साड़ी पहनकर आयी है, एकदम नीलि झक्क्.... पहनने–ओढ़ने का भी ढंग नहीं है।'

क्या यह वही है जिसे अपने मुरलीजी का टिकट काटकर दिया गया है? बेचारा मुरली।

एक के बाद एक दंभ, उपेक्षा, तिरस्कार, संदेह की कीच में लिपटे वाक्य रह–रहकर उछलते रहे।

कैसे समय आ गया है, चोरी–चकारी करनेवाले अब हमारे रहनुमा बनेंगे.... हम पर हुक्म करेंगे।

लो, हो गया बंटाधार....मेरों की रखवाली अब चोर करेंगे।

भाई साब, इसी की तो कहते हैं लोकतंत्र!

घंटे का लोकतंत्र। इससे तो गुलामी ही अच्छे थे हम........''[61]

---

[60] मृदुला गर्ग : कथाक्रम–अक्टूबर–दिसम्बर–2005–सं–शैलेन्द्र सागर

[61] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–310

हमारे यहाँ के सवर्ण व इज्जतदार समाज को बाहरी लोगों की गुलामी तो मंजूर है लेकिन दलित, आदिवासी पिछड़े तबके के लोगों का लोकतंत्रिक प्रक्रिया के तहत मुख्यधारा में शामिल होकर सत्ता में आना मंजूर नहीं है। यही उद्घाटित करना उपन्यास का मूल उद्देश्य है। यहाँ लेखक ने कंजर जनजाति के जरिए समकालीन राजनीतिक हकीकत को पूरी नग्नता के साथ पर्दाफाश किया है।

3.5 समाज सुधार के प्रयत्न

कंजर लोग खिलावड़ी रूक्मिणी को 'जिला जनजाति महिला प्रकोष्ठ' की प्रमुख बना देते हैं। तबसे रूक्मिणी के विचार तब्दील हो जाते हैं। वह अब देह धंधा को छोड़कर कंजर समाज को उद्धार करने में लग जाती है। पुल से लेकर गाजूकी तक अच्छी सड़क बनवाती है और पूर्णरूप से गाजूकी का शक्ल ही बदल देती है–

लेखक कहता है– "जिला जनजाति महिला प्रकोष्ठ" की प्रमुख बनते ही रूक्मिणी गाजूकी की काया पटल दी। जिन रास्तों से गुजरते हुए मुँह पर डाठा लगाना पड़ता था, उनमें ईंटों के खडंज्जे विछवा दिए गए। पुल से लेकर गाजूकी तक ही सड़क की शकल ही बदल दी।"[62]

दृढ़ प्रतिज्ञ रूक्मिणी ने भ्रष्टाचारियों द्वारा दी गई धमकियों की परवाह न करते हुए गाजूकी गाँव में विकास के चरण की शुरूआत की। सर्वप्रथम प्राथमिक विद्यालय की प्राण–प्रतिष्ठा कर दी और धीरे–धीरे गाँव के हर बालक को इस विद्यालय में आने के लिए प्रेरित किया। कंजर समाज के इष्टदेव 'माना गूरू' और 'माँ नालिन्य' की वंदना के साथ कक्षाएँ प्रारंभ होने लगीं।

उपन्यासकार ने भी इसे दर्ज किया है– "गाजूकी में एक सरस्वती जनजाति शिशु मंदिर" नामक पाठशाला की स्थापना भी करवा दी।''[63]

राकेश कुमार सिंह ने अपने उपन्यास 'पठार पर कोहरा' में संजीव सान्याल के माध्यम से आदिवासी जनजीवन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करवाया है। उन्होंने

---

[62] रेत ́,भगवानदास मोरवाल–पृ.–211
[63] रेत ́,भगवानदास मोरवाल–पृ.–211

लिखा है– "इन चंद महीनों में संजीव ने एक काम पूरा कर डाला है। वह है प्राथमिक विद्यालय गजलीठोरी की प्राण प्रतिष्ठा........! पढ़ाई से पूर्व प्रार्थना की भाँति बिरसा की वंदना या श्रद्धांजलि स्वरूप एक कविता पढ़ा जाने लगी है। समवेत स्वर में बच्चों से पाठ करातें संजीव, जिसकी की पंक्तियाँ तो बच्चे रट भी चुके हैं।"[64]

कंजर जाति की जरायम पेशा रूक्मिणी इस जाति मुक्ति दिलाने की दिशा में सक्रिय होती है। खिलावड़ी देह–धंधा से मुक्ति दिलाने के लिए 'जनजाति महिला उद्धार सभा' की स्थापना करती है। रूक्मिणी कहती है– "तू चिंता मत कर नानी, यही रहेंगी हम सब.... बाईजी, ऐसा करते है कि तिबारे पर अपना दफ्तर बना लेते हैं। बाकी काम संस्था यही करती रहेगी। वैद्यजी सही कह रहे थे। एक टेलीफोन लगवा दूँगी..... जब मन करे बत कर लो।" रूक्मिणी ने अंततः अपना निर्णय सुना दिया।

मोरवाल लिखते हैं– "सावित्री बहन से प्रतिवाद करते नहीं बना। चुपचाप इस फैसले को स्वीकार करने के दूसरा रास्ता नहीं था तिबारे तक पहुँचने का।" ठीक है बाईजी, मैं समाज कल्याण मंत्री से टैम ले लेती हूँ। उद्घाटन के लिए। समझ लो, 'जनजाति महिला उद्धार सभा' का काम आज से ही शुरू हो गया'' पुलिकत होते हुए रूक्मिणी ने विषय पर यही विराम लगा दिया।"[65]

रूक्मिणी जनजाति महिला उद्धार सभा की ओर गाजूकी में खादी ग्रामोद्योग एक संस्था का निर्माण करती है। इस संस्था के माध्यम से देह व्यवसाय करने वाले खिलावड़ियों को नौकरी देकर देह व्यवसाय से मुक्ति कराती है। अंततः विधानसभा की चुनावों में जीतकर राज्य के अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण उपमंत्री बन जाती है।

3.6 रेत उपन्यास की भाषा

भगवानदास मोरवाल कृत 'रेत उपन्यास में कंजरों की संस्कृति के अंतर्गत उनकी मान्यताओं, मूल्यों, रीति–रिवाजों, आस्था, विश्वास, रोगशोक वेशभूषा, खानपान,

---

[64] पठार पर कोहरा–राकेश कुमार सिंह–पृ.–188–189
[65] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–225

आचार–विचार, देवी–देवताओं, सुरक्षा अस्त्रों आदि का बारीकी के साथ वस्तुपरक चित्रण किया है। आपसी अंतर्विरोधों तथा असंतोष के रूप में संतों और अनिता भाभी को चित्रित किया है। संतो और अनिता भाभी की स्थिति का द्वंद्व, अवसाद, उनके द्वारा उठाये गए कदम अलग से मनोवैज्ञानिक विमर्श की माँग करते हैं। एक ही परिस्थिति में पड़ी हुई ये दो महिलाएँ अलग–अलग कदम क्यों उठाती हैं? कृत में तमाम महिला संगठनों, संस्थाओं उनकी दीक्षियों तथा राजनीतिक पार्टियों, विशेषकर, राष्ट्र को समर्पित कुआरों की राजनीतिक पार्टी तथा उनके नायक यथार्थ चित्रण है। यहाँ राष्ट्र के प्रति समर्पण के निहितार्थों में एक यह भी कि पार्टी के भाई साब और बहिन जी परस्परिक 'देह समर्पण' राष्ट्र के प्रति समर्पित होने के लिए करते रहते हैं। बड़ी खुबसूरती से उपन्यासकार आज के कथित बड़े–बड़े राजनेताओं नेत्रियों पर प्रखर और मारक व्यंग्य किया है, उपन्यासकार संयत लहजों में लातों से नहीं बातों से विरोधी को धूल चटा देने की कला में सिद्धहस्त है। कुछ बातों और प्रसंगों ने 'रेत' को रोचक और दिलचस्प बना दिया है। पुलिस ऑफिसर धर्मराज और हवलदार रामसिंह वार्ता, छापामार दल, और ग्राहक प्रसंग, दरोगा धरमराज और कमला बुआ वार्ता, धरमराज, और मोटा आसामी वार्ता, संतों और कज्जा प्रसंग, घनश्याम कृष्ण 'वैद्यजी' और भूरा पीर मजार प्रसंग, वैद्यजी और रूक्मिणी चुनाव प्रसंग, कमला बुआ और वैद्यजी वार्ता, इन सबसे सर्वाधिक रोचक और मनोदशाओं का चित्रण किया है।

इस उपन्यास के केंद्र में चूंकि देह है अतः देह भाषा का यहाँ विशेष महत्व है। लेखक ने इसे एक शिल्प अवयव की तरह काम में लिया है। हर आदमी यहाँ दूसरे को जितना शब्दों या संवादों से समझ रहा है, उससे ज्यादा उसकी देह भाषा से समझ रहा है। देहभाषा के इस अवयव ने हर व्यक्ति को एक अतिरिक्त क्षमता प्रदान की है। "बचनों, कुत्ता लगे है.......।" और "लोहड़ा भाग, कुत्ता आई ग्यो" कमला बुआ तो जैसे इसकी अधिष्ठात्री हैं। 'हुस्नबाग पाउच के किनके और बार–बार मरी–मरा' आदि। देहभाषा से दृश्य में नाट्य एवं पटकथापन पैदा हुआ है। इससे उपन्यास को एक नयी संरचना, मिली है। देहभाषा एवं पटकथापन मोरवाल के कथाशिल्पका नया आयाम है। हालांकि क्षेत्र विशष की बोली और खासकर कंजर जनजाति के लोगों में प्रयुक्त

होनेवाले खास शब्दों और मुहावरों के इस्तमाल से लेखक ने उपन्यास को प्रामाणिक बनाना का भरसक प्रयास किया है– "पानी फिरने की नौबत आ चुकी है।", "जल्दी ही उसे दिन के तारे नजर आ जाएंगे।" "घर का जोगी जोगड़ा" आदि है। उपन्साय में कहावतें भी मिलती हैं– "तभी किसी ज्ञानी ने कहा था कि खिलावड़ी का बुढ़ापा और वकील की जवानी बहुत बुरी होती है।" "डरा हुआ अकेला मुक्ति का रास्ता भी दिखाता है।" "गधे के सिर से सींग सा गायब हो गए हैं।" "पुरुष का खाना और स्त्री का नहाना, बराबर होता है।"[66]

जिस तरह उपन्यास में जगह–जगह घटिया जासूसी उपन्यासों की तरह 'रहस्य' और रोमांच पैदा करने की कोशिश की गई है, फिर चाहे वह वर्णित स्थितियाँ हो या घटनाक्रम अथवा पात्रों के बीच के संवाद वे प्रभावी नहीं लगते हैं। फिर भी औपन्यासिक प्रतिभा और कला के साथ कंजरों के जीवन–संघर्ष के बारे में किए गए शोध के लिए लेखक का परिश्रम प्रशंसनीय है। कहना न होगा कि यह उपन्यास बेहद पाठनीय है।

---

[66] रेत ,भगवानदास मोरवाल–पृ.–42

उपसंहार

पश्चिम में भले ही उपन्यास का जन्म मध्यवर्ग के उदय के सात हुआ, हो लेकिन हिंदी में भारतेंदु युग में उपन्यास का आरंभ हुआ है। उपन्यास प्रत्यक्षतः सामाजिक प्रतिरोध के आख्यान के रूप में और अप्रत्यक्षतः अंग्रेजी शासन के विरोध में हुआ। उपन्यास मानवजीवन का चित्रण करनेवाली वह सशक्त विधा है जो मनुष्य के अनुभवों और कल्पनाओं को भी एक रूप प्रदान करती है। उपन्यास साहित्य की एक यथार्थपरक विधा है। चूँकि मानवजीवन का परंपरागत प्रवाह ऐतिहासिक और आधुनिक काल में स्वभावतः समकालीन परिस्थितियों के अतंर्गत नवीन दिशा और क्षेत्र ग्रहण करता है। इसीलिए आज के समकालीन उपन्यासकार अनेक समस्याओं को लेकर रचनाएँ कर रहे हैं। परिणामतः हमारे समय में उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधाओं के रूप में प्रतिष्ठित है।

इस लघुशोध प्रबंध "'रेत' उपन्यास में चित्रित जनजातीय जीवन" में भगवानदास मोरवाल कृत 'रेत' उपन्यास में यह दिखाया गया है कि कैसे कंजर जनजातीय समाज से मुक्त होकर अपनी अस्मिता और अपनी अस्तित्व के लिए संघर्ष करती एक विमुक्त जनजाति है। 15 अगस्त 1947 को हमें अंग्रेजों की गुलामी से आजादी तो मिल गई लेकिन हमने साठ वर्षों बाद भी उनके द्वारा बनाए गए नियम, कानून में न ज्यादा संशोधन किया और न हीं परिवर्तन। उदाहरण के लिए 1881 में निर्मित इंडियन पैनल कोड की कई धाराएँ और क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट 1924 देखा जा सकता है जो ऐसी घूमांतु जनजातियों में जरामय पेशा करने वाली और जन्मजात अपराधी मानता है। विडंबना की बात यह है कि आज स्वतंत्र भारत में भी पुलिस व्यवस्था उन्हें अंग्रेजों द्वारा निर्मित कानून की दृष्टि से ही देखती है, जबकि उनकी आँखों में भी आजादी का सपना था। वैसे तो ऐसी तथाकथित अपराधी जनजातियों की संख्या अधिक है लेकिन कुछ जनजातियों के इतिहास–भूगोल और भूगोल से जब भी हम टकराते हैं। हमारा माथा शर्म से झुक जाता है। जनजातियों की सूची में माना गुरू

और माँ नालिन्य के संतान कंजर जाति ऐसी ही अपराधी जनजाति मानी जाती है जबकि उसका कारण आर्थिक नहीं सामाजिक अधिक है।

भगवानदास मोरवाल के उपन्यास 'रेत' के केंद्र में वहीं कंजर अपराधी जनजाति है, जो अब जंगल में घूमनेवाली कम हमारे समाज का अभिन्न हिस्सा होते हुए लोक विश्वासों और लोकाचारों की धुरी पर अपनी अस्तित्व के लिए संघर्ष करती एक विमुक्त जनजाति है। संभ्रांत समाज के लोगों की आवाजाही दिन के उजाले में तो नहीं लेकिन रात के अंधेरे में प्रायः होती रहती है। दरअसल गाजूकी स्थिति कमला सदन एक चकलाघर जैसा है जहाँ एक साथ नैतिक–अनैतिक, मर्यादित–अमर्यादित घटनाएँ घटती रहती हैं जिसके प्रत्यक्ष गवाह में कमला सदन की बूढ़ी मालकिन कमला बुआ के अतिरिक्त उस सदन में उनकी बेटियाँ– सुशीला, माया, रूक्मिणी, वंदना, पूनम और पिंकी।

एक तरफ देह व्यवसाय है और दूसरी तरफ इसी घर में संतों और अनीता भाभी हैं। यानी दो परंपराओं के बीच टकराहट है। 'बुआ' बनने की नियति है देह व्यवसाय, जबकि 'भाभी' होने का मतलब है घर की चारदीवारों के भीतर घुटने वाली ऐसी सदस्या जो घर की होते हुए भी घर की नहीं है। यही कारण है कि भाभी बनने की की ललक नई पीढ़ी की लड़कियों में तो बिलकुल नहीं है। भाभी की नियति घर की नौकरानी की है, जिसके कारण संतों जैसे भाभी भी चुपचाप कमला सदन से खिसक लेती है।

वैसे तो इस उपन्यास में कमला बुआ और वैद्यजी की बड़ी भूमिका है, जिसके कारण कथा प्रवाह में निरंतरता बनी रहती है। बीच–बीच में कमला सदन द्वारा आयोजित की जाने वाली पार्टियाँ है और पुलिस के छापे। कमला सदन की शान–शौकत में इजाफा होते रहते हैं और उसके संपर्क का दायरा राजनेता तक बढ़ता है। पहले एक समाज सेवीका सावित्री द्वारा एक नेता मुरली से रूक्मिणी जैसे युवती की डाक बंगले में भेंट करवायी जाती है। जिसकी महत्वाकांक्षा उसे प्रतिहिंसा के साथ चुनाव लड़ने को मजबूर करती है और प्रांतीय उद्धार सभा के पद से वह विधान सभा के चुनाव में जीतकर राज्यमंत्री बन जाती है। चुनाव का माहौल पहले और बाद में

बिलकुल वैसा ही है हम प्रायः देखते हैं। इस तरह कंजर जाति की जरायय पेशा करने वाली रूक्मिणी इस जाति को मुक्ति दिलाने की दिशा में सक्रिय होती है।

शोध प्रबंध के अंतर्गत जनजातियों से क्या अभिप्राय है और उनकी संस्कृति, भाषा, सामाजिक, राजनीति स्थितियों के बारे में प्रकाश डाला गया है। भारतीय संविधान में जनजातियों की स्थिति और अपराधी बनने के कारण निर्धनता, बेकारी, सामाजिक एवं आर्थिक आदि पर दृष्टि आकर्षित किया गया है। अतः अपराधी जनजातीय समाज कानून, राजनीति स्तर और भारत की प्रमुख अपराधी जनजातियाँ 'सांसी, हाबूड़ा, बेडिए, भाँतू, नट, बंजारा, कंजर, कबूतरा' आदि का परिचय देने की कोशिश की गयी है।

उपन्यासकार भगवानदस मोरवाल की सजगता व संयम ने इस उत्कृष्ट उपन्यास को 'बदनाम' होने से 'अश्लील' होने से, देह विमर्शी होने से बाल–बाल बचा लिया है, क्योंकि उसका मकसद बड़ा और अहम था, वह यह संदेश देना चाहता है क गलीज और तिरस्कृत मानव समूह अगर समाज की देश की मुख्य धारा में शामिल होकर जिसका कि उसे अधिकार है एक आम सभ्य भारतीय बनने की कोशिश में है तो बजाय उसे हतोत्साहित और उपेक्षित, तिरस्कृत करने के, सहारा और आसरा देना। आदमियत रखने वाले आदमी का फर्ज, होना चाहिए, यह फर्ज आदमी का असली शिवत्व है, सुंदरता है उसकी नेक, बनकर 'एक' रूप यानी अपने जैसा बनाना ही समय और सभ्यता का तकाजा है। 'रेत' इस तक़ाजे को पूरा करता है, यही है 'रेत' का अभिप्रेत।

नारी, दलित, अल्पसंख्य और सांप्रदायिकता के विमर्शों के शोर में बिना कोई हंगामा किए भगवानदास मोरवाल न विमर्शों को सीधे जमीन से उठाते हैं और दिखाने के बावजूद अदेखे रह गए अंतर्संबंध हमारे सामने परत–दर–परत खुलते जाते हैं। मोरवाल अपने उपन्यास की विषयवस्तु पर पर्याप्त शोध ही नहीं करते हैं, बल्कि उस समाज का अंगबनकर उससे घुलते–मिलते उस जीवन की त्रासदी को शिद्धत से, राग–रंग से उठाते है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की संरचना में उपन्यास के स्थापत्य के बीच हमेशा एक नीच ट्रेजडी होती है, लेकिन पूरी–पूरी विश्वसनीयता और पठनीयता लिए हुए।

मोरवाल जी के कथा लेखन के केंद्र में हमेशा हाशिए का वह उपेक्षित, प्रताड़ित, और शोषित समाज खास कर स्त्री होती है, जिसकी ओर से संभ्रांत ने मुँह फेर लिया है। इस समाज के जीवन को प्रस्तुत करते हुए वे कोशिश करते हैं कि इस अभिशप्त समाज को मुक्ति मिले। वे अपनी कवित्वपूर्ण संवेदनशीलता से पाठकों का मन ही नहीं दृष्टिकोण भी बदल देते हैं। समकालीन कथा साहित्य में ऐसे लेखक विरले होते हैं।

आधार ग्रंथ सूची

१. ‘रेत’, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन,, २००८, १–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–११०००२।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, 2003, इंस्टीट्यूट एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली–10003।
2. जो इतिहास में नहीं है, राकेश कुमार सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, 2003, इंस्टीट्यूट एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली–10003।
3. जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा.लि., 7 / 31, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
4. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002।
5. ‘एक सेक्स वर्कर की आत्मकथा’, नलिनी, जमीला मौलिक रूप से मलयालम हिंदी में अनुवाद भोला .यामिनी, राजपाल पब्लिशिंग हाउस, 2008, नई दिल्ली।
6. गगन घटा घहरानी, मनमोहन पाठक, कतार प्रकाशन, 1991, धनबाद, 1991, झारखंड।
7. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, 1997, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002।

8. नागार्जुन के उपन्यास में जनजीवन, डॉ. जयकिशन, हर्ष रचना प्रकाशन, 78,–2001, जी.टाइप–IV, जी.पी.आर.ए. कैंपस गच्ची बौली हैदराबाद–300032।
9. आचार्य हजारी प्रसाद, द्विवेदी के उपन्यास में सांस्कृतिक बोध, संजीव भानावत, पंचशील प्रकाशन, 1981, फिल्म, कॉलोनी, जयपुर।
10. हिंदी उपन्यास : स्वतंत्र्य संघर्ष के विविध आयम, डॉ. देवीदत्त तिवारी, तक्षशिला प्रकाशन, 1985, दरियागंज, नई दिल्ली।
11. 'काला पहाड़', भगवानदास मोरवाल, राधकृष्ण प्रकाशन, प्रा.लि., 7/31, अंसारी रोज, दरियागंज, नई दिल्ली–1999।
12. 'बाबल तेरा देशा में', भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–2
13. 'हमारे आदिवासी', राजेंद्र अवस्थी, 'तृषित', बंबई प्रकाशन प्रा.लि. बंबई–1, निकल रोड, प्र.सं.–1962।
14. 'भारत की जनजातियाँ', डॉ. शिवतोष दास, किताब घर प्रकाशन, गांधीनगर दिल्ली–110031, संस्करण, अगस्त, 1983।
15. 'जनवादी समझ और साहित्य', डॉ. रामनारायण शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौकी, वाराणसी, प्र.सं. 1985।
16. 'जनजातीय समाजशास्त्र', डॉ. श्रीनाथ शर्मा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी रवींद्रनाथ ठाकुर मार्ग, बनगंग भोपाल, मध्य प्रदेश–162003, पंचम आवृत्ति–2007।
17. 'जनजातीय भारत', नदीम हसनैन, रवि मजूमदार द्वारा जवाहर पब्लिशर्स डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली–110016, 31 जुलाई, 1992।
18. 'जनजातीय भारत', डॉ. एन.आर.एन. श्रीवास्तव।
19. 'आदिवासी साहित्य यात्रा', सं. रमणिका गुप्त। राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–2
20. 'मानव और संस्कृति', शामाचरण दुबे, राजकमल प्रकाशन–1960, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002

21. ‘Nationalism and communalism politics in India’ Author& Hasan Mushirji Manohar publishers New Delhi& 1994 first edition-

पत्र–पत्रिकाएँ

1. ‘समकालीन जनमत’, सं. ‘सुनील यादव’, संपादकीय कार्यालय–171, कर्नलगंज, स्वराज भवन, के सामने, इलाहाबाद–211002, मार्च–2010।
2. ‘हंस’, सं. राजेंद्र यादव, अक्षर प्रकाशन, प्रा.लि. 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली– 110002, जून, 2008
3. ‘कथादेश’, सं. ‘हरिनारायण’, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–110095, अगस्त, 2008।
4. ‘कथाक्रम’, सं. शैलेंद्र सागर, 3 ट्रांजिल, हॉस्टल, वायरलेस चौरहे के पास महानगर, लखनऊ– 226006।
5. ‘यद्धरत आम आदमी’, सं. रमणिका गुप्त, रमणिका फाउंडेशन, ए. 221, डिफेंस कॉलोनी, ग्रा, फ्लोर, नई दिल्ली–110024, मई–2009
6. ‘आजकल’, सं. सीमा ओझा, आजकल प्रकाशन, कमरा नं. 120, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003, अकटोबर–2008।
7. ‘वर्तमान साहित्य’, सं. नमिता सिंह, रूचिका प्रिंटर्स, दिल्ली–110032।
8. ‘जनसत्ता’ ले. जाबिर हुसैन, दिल्ली में खानाबदोश, 15 दिसंबर, 2008। तृतीय अध्याय